



श्री ज्ञाताधर्म कथाङ्ग सूत्र

की

उन्नीस कथाए

श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के गौतम स्वामी आदि ग्यारह गणधर हुए हैं। “उप्पएणोड वा विगमेड वा पुणेड या” इम त्रिपटी का ज्ञान प्राप्त कर गणधरों ने द्वादशाङ्गी की रचना की, जिसमें ज्ञान दर्शन चारित्र ये तीन मोक्ष के उपाय उतलाए गए हैं। यह शास्त्रों के मुख्य रूप से चार विभाग हैं— द्रव्यानुयोग, गणितानुयोग, चरणरुखणानुयोग और धर्मकथानुयोग। छठे अङ्ग ‘ज्ञाताधर्मकथाङ्ग’ सूत्र में कथानुयोग का धर्षण है।

भगवान् महावीर स्वामी के ग्यारह गणधरों में से पाँचवें गणधर श्री सुधर्मा स्वामी की ही पाठ परम्परा चली है। वर्तमान द्वादशाङ्गी के रचयिता श्री सुधर्मा स्वामी ही माने जाते हैं। उनके प्रधान शिष्य श्री जम्बु स्वामी ने प्रश्न किये हैं और उन्होंने उत्तर दिये हैं। उत्तर देते समय सुधर्मा स्वामी ने प्रत्येक स्थल में ये शब्द कहे हैं—हे आयुष्मन् जम्बू ! जैसा मैंने भगवान् महावीर स्वामी से सुना है, वैसा ही तुझे कहता हूँ।

इसमें यह स्पष्ट मिथ हो जाता है कि इस द्वादशांगी का कथन सर्वज्ञ देव श्री महावीर स्वामी ने भव्य प्राणियों के हितार्थ किया है। इसमें श्री गौतम स्वामी और श्री सुधर्मा स्वामी की स्वतन्त्र प्ररूपणा कुछ भी नहीं है। 'जैमा भगवान् महावीर स्वामी ने फरमाया है वैसे ही मैं तुम्हें कहता हूँ' इस वाक्य में श्री सुधर्मा स्वामी ने "आणाए धम्मो" अर्थात् वीतराग भगवान् की आज्ञा में ही धर्म है और उनके वचन को विनय पूर्वक स्वीकार करना धर्म का मुख्य अंग है, इस तत्त्व का भली भाँति प्रतिपादन किया है। श्री जम्बू स्वामी ने बारबार प्रश्न किये हैं। इसमें यह उतलाया गया है कि शिष्य को विनयपूर्वक जिज्ञासा बुद्धि में प्रश्न करके गुरु से ज्ञान ग्रहण करना चाहिए क्योंकि विनयपूर्वक ग्रहण किया हुआ ज्ञान ही आत्मकल्याण में सहायक होता है।

जम्बू स्वामी के प्रश्न के उत्तर में श्री सुधर्मा स्वामी कहते हैं कि छठे अंग श्री ज्ञाताधर्मकथा के दो श्रुतस्कन्ध कहे गए हैं— ज्ञाता और धर्म कथा। ज्ञाता नामक प्रथम श्रुतस्कन्ध के उन्नीस अध्यायन हैं। प्रत्येक अध्यायन में एक दृष्टान्त (उदाहरण) दिया गया है और अन्त में दार्ष्टान्तिक के साथ सुन्दर ममन्यव करके धर्म के सिद्धी एक तत्त्व को दृढ़ किया गया है। यह सम्पूर्ण सूत्र गद्यमय है। कहीं कहीं पर कुछ गाथाएँ दी गई हैं। इस शास्त्र में नगर, उद्यान, महल, शय्या, समुद्र, स्वप्न, स्वप्नों के फल आदि का तथा हाथी, घोड़े, राजा, रानी, सेठ, सेनापति आदि जगम पदार्थों का वर्णन बहुत विस्तारपूर्वक दिया गया है। कथा भाग की अपेक्षा वर्णन का भाग अधिक है। जहाँ पर पूर्व पाठ का वर्णन फिर से आया है वहाँ "जाय (यावत्)" शब्द देकर पूर्व पाठ की भलामण दी गई है।

सामान्य ग्रन्थ की अपेक्षा शास्त्र में गम्भीरता और गुरुगमता

विशेष होती है। इस लिए शास्त्र अध्ययन के अभिलाषी मुमुक्षु आत्माओं को शास्त्र का अध्ययन श्रद्धा पूर्वक गुरु के पास ही करना चाहिए। इस तरह से प्राप्त क्रिया हुआ ज्ञान ही आत्म-न्याय में विशेष सहायक होता है।

(१) मेघकुमार की कथा

पहला अध्ययन— विनय का स्वरूप बतलाने के लिए पहला अध्ययन रूढ़ा गया है। इसका नाम 'उत्तिस' है। यदि कोई शिष्य अप्रिणीत हो जाय तो उसे मीठे वचनों से उपालम्ब देकर गुरु को चाहिए कि वह उसे विनय मार्ग में प्रवृत्ति कराये। इस प्रकार उपदेश देने के लिए पहले अध्ययन में मेघकुमार का दृष्टान्त दिया गया है।

राजगृह नगर में श्रेणिक राजा राज्य करता था। उसकी रानी का नाम नन्दा देवी था। उसकी कुचि से उत्पन्न हुआ अमयकुमार नाम का पुत्र था। वह राजनीति में बहुत चतुर था। औत्पातिकी, वैनयिकी आदि चारों बुद्धियों का निधान था। वह राजा का मंत्री था।

श्रेणिक राजा की छोटी रानी का नाम धारिणी था। एक समय रात्रि के पिछले पहर में उसने हाथी का शुभ स्वप्न देखा। राजा के पास जाकर उसने अपना स्वप्न सुनाया। राजा ने कहा—देवि! इस शुभस्वप्न के प्रभाव से तुम्हारी कुचि से किसी पुण्यशाली प्रतापी बालक का जन्म होगा। यह सुन कर रानी बहुत प्रसन्न हुई।

दूसरे दिन प्रातःकाल स्वप्नपाठकों को बुला कर राजा ने स्वप्न का अर्थ पूछा। उन्होंने बतलाया कि यह स्वप्न बहुत शुभ है। रानी की कुचि से किसी पुण्यशाली प्रतापी बालक का जन्म होगा।

यतनापूर्वक अपने गर्भ का पालन करती हुई धारिणी रानी समय बिताने लगी। तीसरे महीने में रानी को अकाल मेघ का दोहद (दोहला) उत्पन्न हुआ। वह सोचने लगी—पिजली सहित

गर्जता हुआ मेघ हो, छोटी छोटी बूदें पड़ रही हों, मर्मत्र हरियाली हो, मोर नाच रह हों आदि सारी बातें वर्षाश्रुतु की हैं। गेम समय में वनक्रीड़ा करने वाली माताएँ वन्य हैं। यदि मुझे भी ऐसा योग मिले तो उम्भार पर्यंत मैं ममीप क्रीड़ा करती हुई मैं अपना दोहद पूर्ण करूँ।

धारिणी रानी की इच्छा पूरी न होने से वह प्रतिदिन दुर्ल होने लगी। दासिया न जाकर राजा को इस बात की सूचना दी। राजा ने रानी से पूछा—प्रिये! तुम्हारे दुर्ल होने का क्या कारण है और तुम इस प्रकार आतंघ्यान क्यों कर रही हो? तब रानी ने अपने दोहद की बात कही। राजा ने कहा—मैं ऐसा प्रयत्न करूँगा जिससे तुम्हारी इच्छा शीघ्र ही पूर्ण होगी। इस प्रकार रानी को आश्वासन देकर राजा वापिस अपने महल में चला आया। रानी के दोहद को पूर्ण करने का वह उपाय सोचने लगा किन्तु उसे कोई उपाय न मिला। इससे राजा आतंघ्यान करने लगा। इसी समय अभयकुमार अपने पिता के पादवन्दन करने के लिए वहाँ आया। अभयकुमार के पूछने पर राजा ने उसे अपनी चिन्ता का कारण बताया। अभयकुमार ने कहा—पिताजी! आप चिन्ता मत कीजिये। मैं शीघ्र ही ऐसा प्रयत्न करूँगा जिससे मेरी लघु माता का दोहद शीघ्र ही पूरा होगा।

अपने स्थान पर आकर अभयकुमार ने विचार किया कि अशुभ मेघ का दोहला देवता की सहायता के बिना पूरा नहीं हो सकता। ऐसा विचार कर अभयकुमार पौषधशाला में आया। अष्टम तप (तीन उपवास) स्वीकार करके अपने पूर्वभय के मित्र देव का स्मरण करता हुआ वह समय बिताने लगा। तीसरे दिन अभयकुमार का पूर्व मित्र सौधर्म कल्पवासी एक देव उसके सामने प्रकट हुआ। अभयकुमार ने उसके सामने अपनी इच्छा प्रकट की।

देव ने कहा— हे आर्य ! मैं अकाल में वर्षाऋतु की प्रक्रिया (रचना) करूँगा जिसमें तुम्हारी लघुमाता का दोहद पूर्ण होगा । ऐसा कह कर वह देव वापिस अपने स्थान पर चला गया ।

दूसरे दिन देव ने वर्षाऋतु की प्रक्रिया की । आकाश में मर्पत्र मेघ छा गये और छोटी छोटी बूँदें गिरने लगीं । हाथी पर बैठ कर रानी धारिणी राजा के साथ वन में गई । वैभार पर्यंत के पाम वनक्रीड़ा करती हुई रानी अपने दोहल को पूर्ण करने लगी । दोहला पूर्ण होने पर रानी को बड़ी प्रसन्नता हुई ।

नी मास पूर्ण होने पर रानी की कुक्षि में एक पुत्र का जन्म हुआ । दामियों द्वारा पुत्रजन्म की सूचना पाकर राजा को बहुत हर्ष हुआ । गर्भावस्था में रानी को मेघ का दोहला उत्पन्न हुआ था इसलिए पुत्र का नाम मेघकुमार रखा गया ।

योग्य वय होने पर मेघकुमार को पुरुष की ७२ कलाओं की शिक्षा दी गई । युवावस्था की प्राप्त होने पर मेघकुमार का विवाह सुन्दर, सुशील और स्त्री की ६४ कलाओं में प्रवीण श्राद्ध राजकन्याओं के साथ किया गया ।

एक समय भगवान् महावीर स्वामी राजगृह नगर के बाहर गुणशील नामक उद्यान में पधार । भगवान् का आगमन सुनकर प्रजाजन, राजा और मेघकुमार भगवान् को वन्दना करने के लिए गये । भगवान् ने धर्मोपदेश फरमाया । उपदेश सुनकर मेघकुमार को समार में वैराग्य उत्पन्न हो गया ।

पर श्राद्ध माता पिता से दीक्षा लेने की आज्ञा मागी । बड़ी कठिनाई के साथ माता पिता से दीक्षा की आज्ञा प्राप्त की । राजा श्रेणिक ने बड़े समारोह और धूमधाम के साथ दीक्षा महात्सव किया । मेघकुमार दीक्षा लेकर ज्ञानाम्याम करने लगे । रात्रि के समय जब सोन का वक्त आया तब मेघकुमार का विछीना सब साधुओं

के अन्त में किया गया क्यों कि दीक्षा में वे मन से छोटे थे। रात्रि में डर उग्र आने जाने वाले माधुओं के पादसंघट्टन से मेघ कुमार को नींद नहीं आई। नींद न आने से मेघकुमार अतिरिक्तित्त हुए और विचार करने लगे कि प्रातः काल ही भगवान् की आज्ञा लेकर ली हुई इस प्रयत्न को छोड़ कर वापिस अपने घर चला जाऊँगा। ऐसा विचार कर प्रातः काल होते ही मेघकुमार भगवान् के पास आज्ञा लेने को आये। मेघकुमार के विचारों एवं उनके मनोगत भावों को अचलज्ञान से जान कर भगवान् फरमाने लगे कि हे मेघ ! तुम इस जरा से क्रुष्ट से घबरा गये। तुम अपने पूर्वभक्त को तो शक करो। पहले हाथी के मन में वन में लगी हुई दावानल को देख कर तुम भयभ्रान्त होकर वहाँ से भागने लगे किन्तु आगे जाकर तालाब के बीच में बहुत पुरी तरह से फँस गये और बहुत कोशिश करने पर भी निकल न सके। इतने में एक दूसरा हाथी आगया और उसके दंत प्रहार से मर कर फिर दूसरे जन्म में भी हाथी हुए। एक वक्त जंगल में लगी हुई दावानल को देख कर तुम्हें जातिस्मरण ज्ञान उत्पन्न हो गया। ऐसे दावानल से बचने के लिए गंगा नदी के दक्षिण किनारे पर एक योजन का लम्बा चौड़ा एक मण्डल बनाया। एक वक्त जंगल में फिर आग लगी उसमें बचने के लिए फिर तुम अपने मण्डल (घेरा) में आये। वहाँ पहले से ही बहुत से पशु, पक्षी आकर ठहरे हुए थे। मण्डल जीवों में अचानक भरा हुआ था। उड़ी मुश्किल में तुम को थोड़ी सी जगह मिली। कुछ समय बाद अपने शरीर को सुजलाने के लिए तुमने अपना पैर उठाया। इतने में दूसरे जलाने प्राणियों द्वारा धकेला हुआ एक शशक (खरगोश) उस जगह आ पहुँचा। शरीर को सुजला कर जब तुम वापिस अपना पैर नीचे रखने लगे तो एक शशक को घँटा हुआ देखा। तब—

प्राणरूपाए, भूयाणरूपाए, जीवाणरूपाए, सत्ताणरूपाए

अर्थात्— प्राण, भूत, जीव, सत्त्वों की अनुकम्पा से तुमने अपना पैर ऊपर अधर ही रखा किन्तु नीचे नहीं रखा। उन प्राण (द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय), भूत (धनस्पतिकाय), जीव (पञ्चेन्द्रिय जाव) और सत्त्वों (पृथ्वीकाय, अप्काय, तेजकाय, वायुकाय) की अनुकम्पा करके तुमने समार परित्त किया और मनुष्य आयु का बंध किया। अर्द्ध दिन में वह दानानल शान्त हुआ। मय पशु वहाँ में निकल कर चले गये। तुमने चलने के लिए अपना पैर लम्बा किया किन्तु तुम्हारा पैर अकड़ गया जिससे तुम एकदम पृथ्वी पर गिर पड़े और शरीर में अत्यन्त वेदना उत्पन्न हुई। तीन दिन तक वेदना को सहन कर साँ वर्ष की आयुप्य पूर्ण करके तुम धारिणी रानी के गर्भ में आये।

हे मेघ ! तिर्यञ्च के भय में प्राण, भूत, जीव, सत्त्वों पर अनुकम्पा कर तुमने पहले रुभी नहीं प्राप्त हुए सम्यक्तरत्न की प्राप्ति की। हे मेघ ! अब तुम विशाल कुल में उत्पन्न होकर गृहस्थावास को छोड़ साधु नने हो तो क्या साधुआ के पादम्पर्श से होने वाले जरा से ऋष्ट से घबरा गये।

भगवान् के उपरोक्त वचनों को सुन कर मेघकुमार को जाति स्मरण ज्ञान उत्पन्न होगया। फिर मेघकुमार ने सयम में दृढ़ होकर भगवान् की आज्ञा से भिक्षु की वारह पडिमा अङ्गीकार की और गुणरत्नमवत्सर वर्गैरह तप किये। अन्त में सलरुना सथारा कर ऋ विजय नामक अनुत्तर विमान में ३३ सागरोपम की स्थिति वाला देव हुआ। वहाँ से चय कर महापिदेह क्षेत्र में पैदा होकर सयम लेगा और मोक्ष जायगा।

जिस प्रकार संयम से विचलित होते हुए मेघकुमार को भगवान् ने मधुर शब्दों से उपात्म देकर सयम में स्थिर कर दिया

उसी प्रकार गुरु को चाहिए कि मयम में विचलित होते हुए शिष्य को मधुर शब्दों से समझा कर पुनः मयम में स्थिर कर दे।

(२) धन्ना मार्यवाह और विजय चोर की कथा

दूमरा मघद ज्ञात अध्ययन— अनुचित प्रवृत्ति करने वाले की अनर्थ की प्राप्ति होती है और सम्यग् अर्थ की प्राप्ति नहीं होती तथा उचित प्रवृत्ति करने वाले को सम्यग् अर्थ की प्राप्ति होती है। यह बतलाने के लिए धन्ना मार्यवाह और विजय नामक चोर का दृष्टान्त दूसरे अध्ययन में दिया गया है।

राजगृह नगर में धन्ना नामक एक मार्यवाह रहता था। उसी नगर में विजय नाम का एक चोर रहता था। वह बहुत ही पाप र्म करन वाला और क्रूर था। एक समय धन्ना मार्यवाह की स्त्री भद्राने अपने पुत्र देवदत्त को स्नान भक्षण करा कर तथा आभूषणों में अलंकृत कर अपने दास पथक के हाथ में देकर बाहर खिलाने के लिए भेजा। पथक दास देवदत्त को एक जगह बिठा कर दूमर बालकों के साथ खेलने लग गया। इतने में विजय नामक चोर वहाँ आ पहुँचा और देवदत्त बालक को उठा ले गया। एकान्त में ले जा कर उसे मार डाला और उसके मारे आभूषण उतार लिए। उसके मृतक शरीर को एक कुएँ में डाल कर मालुकरुच्छम छिप गया। धन्ना मार्यवाह ने पुलिस को खबर दी। पुलिस ने विजय चोर को ढूँढ़ कर उसे कैदखाने में डाल दिया।

एक बार राज्य के कर (महसूल) की चारी करने के कारण धन्ना मार्यवाह राज्य का अपराधी मानित हुआ। इसलिए उस भी कैदखाने में डाल दिया और संयोगवश उन्हीं खोले में डाला जिसमें आगे विजय चोर था। खाड़ा एक होने के कारण दोनों का आना जाना, उठना बैठना एक ही साथ होता था। जब धन्ना मार्य-

ग्राह टट्टी, पेशाब आदि करने के लिए जाने की इच्छा करता तो वह चोर साथ चलने से इन्कार हो जाता। तब दूसरा कोई उपाय न होने के कारण धन्ना सार्थग्राह अपने भोजन में से थोड़ा भोजन उस चोर को भी देता और उसे अपने अनुकूल रखता। जब धन्ना सार्थग्राह कूद में छूट कर घर आया तो अपने पुत्र की हत्या करने वाले चोर को भोजन देने के कारण उमकी पत्नी ने उमका तिरस्कार किया और उपालम्भ दिया। तब धन्ना ने उस चोर को भोजन देने का कारण समझाया और अपनी पत्नी के क्रोध को शान्त किया।

उपरोक्त दृष्टान्त देखर शास्त्रकार ने इसका निगमन (उपनय) इस प्रकार घटाया है—राजगृह नगर के समान मनुष्य क्षेत्र है। धन्ना सार्थग्राह के समान माधु है। विजय चोर के समान शरीर है। पुत्र के समान निरुपम आनन्द को देने वाला सयम है। अयोग्य आचरण करने से इसका विनाश हो जाता है। आभूषणों के समान शब्दादि विषय हैं। इनका सेवन करने से सयम का विनाश हो जाता है। हडिबन्धन (खोटे) के समान जीव और शरीर का सम्बन्ध है। राजा के समान कर्म परिणाम और राजपुरुषों के समान कर्मों के भेद हैं। छोटे से अपराध के समान मनुष्यायु रन्ध के कारण हैं। मलमूत्रादि की निवृत्ति के समान प्रत्युपेक्षण (पडिलेहना) आदि कार्य हैं अर्थात् जिस प्रकार अपने भोजन में से कुछ हिस्सा विजय चोर को न देने से वह मलमूत्रादि की निवृत्ति के लिए धन्ना सार्थग्राह के साथ नहीं जाता था इसी प्रकार इस शरीर को भोजन आदि न देने से पडिलेहना आदि सयम क्रियाओं में सम्यक् प्रवृत्ति नहीं हो सकती। पन्थक टाम के समान मुग्ध (शब्दादि विषयों में आत्मक होने वाला) सा ^{राजा के समान आचार्य हैं।} दूसरे माधुओं से सुन ^{मे पुष्ट शरीर वाले साधु}

उपालम्भ देने लगते हैं किन्तु उम मायु के द्वारा वेदना की गान्ति, रूयापच्च आदि कारण उत्पन्न होने पर ये आचार्य सन्तुष्ट हो जाते हैं।

निम्न तरह घन्ना मार्थनाह ने दूसरा उपाय न होने के कारण अपने पुत्र को मारने वाल चोर को भोजन दिया इसी तरह मायु को चाहिए कि सिर्फ भयम न निर्वाह के लिए चोर समान इस शरीर को भोजन दे, शरीर की पृष्टि आदि किसी दूसरे उद्देश्य के लिए नहीं। जिस तरह सराय में ठहरने के लिए मजान का भाड़ा देना पड़ता है उसी तरह भयम निर्वाह के लिए शरीर को भोजन रूपी भाड़ा देना चाहिए।

(३) जिनदत्त और सागरदत्त की कथा

तीसरा अण्डरूपात् अध्ययन—समस्ति की शुद्धि के लिए शरीर दोष का त्याग करना चाहिए। शरीर दोष का त्याग करने वाले पुरुष को शुद्ध समस्ति रत्न की प्राप्ति होती है और शरीर आदि करने वाले को समस्ति रत्न की प्राप्ति नहीं होती। इस बात को जताने के लिए तीसरे अध्ययन में अण्डे का दृष्टान्त दिया गया है।

चम्पा नगरी के अन्दर जिनदत्त और सागरदत्त नाम के दो मार्थनाह पुत्र रहते थे। वे दोनों बालमित्र थे। ब्रीड़ा के लिए उद्यान में गए हुए दोनों मित्रों ने एक जगह मयूरी के अण्डे देखे। उन अण्डे को उठा कर वे दोनों मित्र अपने अपने घर ले आए और कूट्टी के अण्डों के साथ रख दिए।

सागरदत्त को यह शक्य हुआ कि इन अण्डों में म मयूरी के बच्चे पैदा होंगे या नहीं? इसलिए वह उनको गारवार हिला कर देखने लगा। हिलाने से वे अण्डे निर्जीव हो गये। जिसमें उसको अति खेद और चिन्ता हुई।

जिनदत्त ने उन अण्डों के विषय में कोई शक्यता नहीं की, इसलिए

उनको हिलाया डुलाया भी नहीं, जिसमे समय पर उन अण्डा मे मयूरी के बच्चे पैदा हुए। फिर वह उन बच्चों को मयूरी पोषक से शिक्षित करा कर नृत्य और क्रीडाए करवाता हुआ आनन्द का अनुभव करने लगा।

उपरोक्त दृष्टान्त देवर शास्त्रकार ने साधु साध्वी श्रावक श्राविका को यह उपदेश दिया है कि वीतराग जिनेश्वर देव के कहे हुए तत्त्वों में किसी प्रकार का मन्देह नहीं करना चाहिए क्योंकि सन्देह ही अनर्थ का कारण है। जिन वचनों में निःशक रहना चाहिए। यदि कदाचित् शास्त्र का कोई गहन तत्त्व उरावर समझ में न आवे तो अपनी बुद्धि की मन्दता और ज्ञानापरिणीय का उदय समझ कर कभी विद्वान् आचार्य का स्याग मिलने पर उस तत्त्व का निर्णय करने की बुद्धि रखनी चाहिए किन्तु शक्ति न होना चाहिए।

तहमेन मच्चं निस्मकं जं जिषेहि पपेइष।

अर्थात्—जो केवली भगवान ने फरमाया है उही सत्य है। ऐसी दृष्ट श्रद्धा रखनी चाहिए क्योंकि तीर्थङ्कर देवों ने केवल मसार के प्राणियों के परोपकार के लिए ही इन तत्त्वों का प्रतिपादन किया है। वे राग द्वेष और मोह से रहित होते हैं इसलिए उनको झूठ योलन का कोई कारण ही नहीं है। अतः वीतराग जिनेश्वर के वचनों में निःशङ्कित और निष्काचित होना चाहिए।

(१) कछुए और शृगाल की कथा

चौथा 'कर्मज्ञात' अध्ययन—अपनी पाँच इन्द्रियों को वश में रखने से गुण की प्राप्ति होती है और वश में न रखने से अनेक प्रकार के दोष उत्पन्न होते हैं। इसके लिए दो कछुओं और शृगालों का दृष्टान्त इस अध्ययन में दिया गया है।

वाराणसी नगरी के बाहर गंगा नदी के किनारे एक डूब था।

उममें दो रूहए रहते थे। उस द्रव क वास ही एक मालुकाफन्त्र था।
 यहाँ दो पापी शृगाल (मियालिए) रहते थे। एक दिन उन दोनों न
 उन कछुआ को देखा। शृगाला को देखते ही दोनों कटुओं न अपने
 शरीर के मत्र श्रद्धों को मज्जोच लिया जिमसे वे शृगाल उनका कुछ
 भी नुकसान नहीं कर सके किन्तु थोड़े समय बाद ही उममें न
 एक कछुए ने उन शृगालों को दूर गए हुए समझ कर धीरे धीरे
 अपनी गर्दन और पैर बाहर निकाले। उमके पैरों को बाहर निकाले
 हुए देख कर वे पापी शृगाल गीघ्रतापूर्वक यहाँ आए और उम
 कछुए ने शरीर के श्रद्धों को छेद डाला और उमे जीवन रहित
 कर डाला। दूसरा कछुआ, जिसने अपने श्रद्ध गुप्त रखे और
 बाहर नहीं निकाले, पापी शृगाल उमका कुछ भी नहीं निगाह
 मके और वह कछुआ उस द्रव में श्रानन्तपूर्वक रहने लगा।

इस दृष्टान्त का उपनय घटाते हुए शास्त्रकार ने बतलाया कि दो
 कछुओं के समान दो माधु समझने चाहिए। चार पैर और ग्रीवा
 के समान पाँच इन्द्रियाँ हैं। बाहर निकालने के समान शब्दादि
 विषय हैं। उनमें प्रवृत्ति करना राग, द्वेष रूपी दो शृगाल हैं। इन
 दोनों क वश में होने से संयम का घात हो जाता है। जो माधु
 इन्द्रियों के विषयों में प्रवृत्त नहीं होता वह दूसरे कछुए की तरह
 द्रव सुख के समान मोक्ष सुख को प्राप्त करता है और इन्द्रिय सुख
 में लोलुप माधु मसार मागर में परिभ्रमण करता हुआ अनन्त
 दुखों को भोगता है। इस लिये साधु को इन्द्रियों के सुखों में
 तथा शब्दादि विषयों में लोलुप नहीं होना चाहिए।

(५) शैलक गजर्षि की कथा

पाँचवाँ शैलक ब्राह्मण अध्ययन—यदि किसी कारण से कोई साधु
 इन्द्रियों के वश में पड़ कर संयम में शिथिल पड़ जाय परन्तु फिर

अपनी भूल को ममक कर समय मार्ग में षड हो जाय तो वह भी अपने अर्थ की मिट्टि कर सकता है इसके लिए शैलक राजपि का दृष्टान्त दिया गया है ।

द्वारिका नगरी में कृष्ण वासुदेव राज्य करते थे । उनके राज्य में थावचापुत्र नामक एक सार्थराहपुत्र रहता था । एक समय भगवान् नेमिनाथ स्वामी वहाँ प्यार । उनका धर्मोपदेश सुन कर थावचापुत्र को वैराग्य उत्पन्न हो गया और एक हजार पुरुषों के साथ प्रज्या ग्रहण की । भगवान् की आज्ञा लेकर थावचापुत्र अनगार एक हजार साधुओं के साथ अलग निहार करने लगे । एक बार निहार करते हुए शैलकपुर प्यार । वहाँ का राजा शैलक अपने पन्थक आदि पाँच सौ मन्त्रियों सहित उनका धर्मोपदेश सुनने के लिए आया । प्रतिशोत्र प्राप्त कर उसने श्रापक वर्म अग्नीकार किया ।

उस समय शुरु परित्राजक एक हजार परित्राजकों सहित अपने मत का उपदेश देता हुआ विचरता था । विचरता हुआ वह साँगन्धिका नगरी में आया । उसका उपदेश सुन कर सुदर्शन मेठ ने शौचधर्म अङ्गीकार किया ।

एक समय ग्रामानुग्राम निहार करते हुए थावचापुत्र भी साँगन्धिका नगरी में प्यारे । उनका धर्मोपदेश सुनने के लिए नगर जनों के साथ सुदर्शन मेठ भी गया । उनका उपदेश सुन कर सुदर्शन मेठ ने शौचधर्म का त्याग कर दिया और विनय वर्म स्वीकार कर श्रापक व्रत अङ्गीकार कर लिये । इस बात को जान कर शुरु परित्राजक वहाँ आया किन्तु सुदर्शन ने उसका आदर मत्कार नहीं किया । इसके पश्चात् वह सुदर्शन मेठ की साथ लेकर थावचापुत्र अनगार के पारम गया और बहुत से प्रश्न किये । उनका युक्ति युक्त उत्तर सुन कर शुरु परित्राजक को सम्यग् तत्त्व का बोध हो गया और अपने हजार शिष्यों सहित थावचापुत्र अनगार के

पाम पत्रज्या अङ्गीकार कर ली। अपने धर्माचार्य श्रीथावचापुत्र अन्-
गार की आज्ञा लेकर शुक निर्ग्रन्थ अपने एक हजार शिष्यों सहित
अलग विहार करने लगे। कुछ समय पश्चात् पात्रचापुत्र अन्गार
को रत्नलवान उत्पन्न होगया और वे मोक्ष में पधार गये।

एक समय विहार करते हुए शुक निर्ग्रन्थ शैलरपुर पधर।
शैलरु राजा ने अपने पुत्र मण्डूक को राज मिहामन पर विठा कर
शुक निर्ग्रन्थ के पाम पथर आदि ५०० मन्त्रिया सहित टीका
अङ्गीकार कर ली और विचरने लगे। शुक निर्ग्रन्थ की आज्ञा
अनुसार शैलरु राजर्षि पथर आदि ५०० शिष्यों सहित अलग
विहार करने लगे। कुछ काल बाद शुक निर्ग्रन्थ को रत्नलवान
उत्पन्न हो गया और वे मोक्ष पधार गये।

ग्रामानुग्राम विहार कर धर्म का उपदेश करते हुए शैलरु राजर्षि
के शरीर में पित्त ज्वर की बीमारी हो गई। शैलरुपुर के राजा
मण्डूक की आज्ञा लेकर वे उसकी दानशाला में टहर गये। राजान
चतुर वैद्यों द्वारा उनकी चिकित्सा करवा जिमसे थोड़े ही समय में
स्वस्थ हो गये। स्वस्थ हो जाने

रादिम स्वादिम आदि में मूर्च्छित	मनोज्ञ
राजर्षि न वहाँ से विहार नहीं	क + ११
देख कर दूसरे मन साधुओं ने	कर
एक पथर साधु उनकी सेवा में ग्हा	।
मित्र प्रतिग्रमण कर पथर नि	॥
के लिए उनके चरणा का स्पर्श	

अशन पान आदि का गृह आहार
३। पैरों का स्पर्श करने के कारण
जिमसे वे कृपित हो गये। पंचक निर्ग्र
पुज्य ! आन चाँमासी पर्व है

मैं आपको समाने के लिए आया हूँ। मेरी तरफ से आपको जो उपद्रव हुआ है उसके लिए मैं क्षमा चाहता हूँ। पथक मुनि के उपरोक्त प्रवचनों को सुन कर शैलक राजर्षि को प्रतिबोध हुआ और विचार करने लगे कि राज्य का त्याग करके मने दीक्षा ली है अब मुझे अज्ञानादि में मूर्च्छाभास रख कर समय में शिथिल बनना चाहिए। ऐसा विचार कर शैलक राजर्षि दूसरे दिन प्रातः काल ही मण्डूक राजा को उसके पीठ फलक आदि सम्भला कर समय में दृढ़ हो कर विहार करने लगे। इस वृत्तान्त को सुन कर उनके दूसरे शिष्य भी उनकी मना में आगये और गुरु की सेवा शुश्रूषा करते हुए विचरने लगे। उद्धृत वर्षों तक श्रमण पर्याय का पालन कर शैलक राजर्षि और पथक आदि पाँच सौ ही निर्ग्रन्थों ने मिद्ध पद प्राप्त किया।

इस अध्ययन के अन्त में भगवान् ने मुनिया को उपदेश करते हुए फरमाया है कि जो माधु साध्वी प्रमाद रहित होकर समय मार्ग में प्रवृत्ति करेंगे वे इस लोक में पूज्य होंगे और अन्त में मोक्ष पद को प्राप्त करेंगे।

(६) तुम्बे का दृष्टान्त

छटा 'तुम्बकजात' अध्ययन-प्रमादी को अनर्थ की प्राप्ति और अप्रमादी को अर्थ की प्राप्ति होती है अर्थात् प्रमाद में जीव भारी-जर्मा और अप्रमाद से लघुकर्मा होता है। इस बात को उतलाने के लिए छठे अध्ययन में तुम्बे का दृष्टान्त दिया गया है।

जैसे किसी तुम्बे पर टाभ और कुश लपेट कर मिट्टी का लेप कर दिया जाय और फिर उसे धूप में सुरा दिया जाय। इसके बाद क्रमशः टाभ और कुश लपेटते हुए आठ बार उसके ऊपर मिट्टी का लेप कर दिया जाय। इसके पश्चात् उस तुम्बे को पानी

में छोड़ दिया जाय तो वह मिट्टी के लेप से भारी होने के कारण पानी के तल भाग में नीचे चला जायगा। पानी में पड़ा रहने के कारण ज्यों ज्यों उसका लेप गल कर उतरता जायगा त्यों त्यों वह ऊपर की तरफ उठता जायगा। जब उस पर में आठा लेप उतर जायेंगे तब वह तुम्हा पानी के ऊपर आजायगा।

तुम्हे सा दृष्टान्त देकर शास्त्रकार ने यह बताया है कि इमी प्रकार जीव प्राणतिपात आदि अठारह पापस्थानों का सेवन कर आठ कर्मों का उपार्जन करते हैं निम्नसे भारी होकर वे नरकादि नीच गतियों में जाते हैं। आठ कर्मों से मुक्त हो जाने के पश्चात् जीव लोकाग्र में स्थित मिद्धस्थान (मुक्ति) में पहुँच जाते हैं। अतः जीवों को प्राणतिपात आदि पापों से निवृत्ति करनी चाहिए।

(७) चार पुत्रवधुओं की कथा

सातवा 'रोहिणी ज्ञान' अध्ययन-पाँच महाव्रतों का मध्यम पालन करने वाले आराधक माधु को शुभ फल की प्राप्ति होती है और विराधक को अशुभ फल की प्राप्ति। इस बात को बताने के लिए सातवें अध्ययन में रोहिणी आदि सा दृष्टान्त दिया गया है।

राजगृह नगर के अन्दर घन्ना नाम का एक सार्थवाह रहता था। उसके भद्रा नाम की भार्या थी। उसके घनपाल, घनदेव, घनगोप और अनरक्षित नाम के चार पुत्र थे। इनकी भार्याओं के नाम क्रमशः उज्जिष्ठा, भोगवती, रक्षिका और रोहिणी था। घन्ना सार्थवाह ने अपनी पुत्रवधुओं की बुद्धि की परीक्षा करने के लिए मन बुद्धिपुत्रों के मामन प्रत्येक को पाँच २ शालिग्रह (द्विलिखे सहित चारल) दिये। उनको लेकर ज्येष्ठ पुत्रवधु ने तो फल दिया, दूसरी ने आदरपूर्वक खा लिया, तीसरी ने नहीं छिपावत के साथ अपने जेवरों की पेट्टी में रख दिया, चौथी ने

उन शालिकरणों को लेकर अपने बन्धु वर्ग को दे दिया और कहा कि वर्षा होते ही इन शालिकरणों को साफ किये हुए खेत में बो देना और बड़े होने पर फिर दूसरी जगह बोना इस तरह क्रमशः होते रहना । मन्धुवर्ग ने उसके कथनानुसार कार्य किया । इस प्रकार पाँच वर्ष बीत गये ।

एक समय श्वसुर ने पुत्रवधुओं से ये पाँच शालिकरण वापिस माँगे तब उन्होंने अपना अपना वृत्तान्त कह सुनाया । छोटी पुत्रवधु ने उन शालिकरणों से पैदा हुए शालि धान्य के कई गाड़े भरवा कर मगराये और श्वसुर के सामने सारी हकीकत कही । श्वसुर ने उन चारों का वृत्तान्त सुन कर उनकी बुद्धि के अनुसार उन को काम सौंप दिया अर्थात् बड़ी बहू को घर का कचरा कूड़ा निकासने का, दूसरी को रसोई बनाने का, तीसरी को भाडागारिणी का यानी घर के माल की रक्षा करने का काम सौंपा और चौथी बहू को अति बुद्धिमती समझ कर उसे घर की मालकिन बनाया ।

उपरोक्त दृष्टान्त देकर भगवान् ने अपने शिष्यवर्ग को संबोधित करके फरमाया कि जो साधु साध्वी पाँच महात्रतों को लेकर पहली और दूसरी बहू की तरह उनका त्याग कर देते हैं या रसनेन्द्रिय के बशीभूत हो खाने पीने में ही लग जाते हैं वे इमलोक में अयश अकीर्ति का उपार्जन कर निन्दा के पात्र होते हैं और चतुर्गति रूप समार म परिभ्रमण करते रहते हैं । तीसरी और चौथी पुत्रवधु के ममान जो साधु साध्वी पाँच महात्रतों को लेकर मम्यक् प्रकार से उनका पालन करते हैं तथा अपने गुणों को अधिकाधिक बढ़ाते हैं वे इमलोक में विपुल यश कीर्ति का उपार्जन कर पूज्यपद को प्राप्त करते हैं और अन्त में सिद्धपद को प्राप्त करते हैं ।

इस दृष्टान्त को जान कर भव्य प्राणियों को र्म के निषय में अभ्रमत्त रूप से प्रवृत्ति करनी चाहिए । *

(८) भगवान् मल्लिनाथ की कथा

आठवाँ 'मल्लि ज्ञात' अध्ययन—पाँच महाप्रता की तोहर यदि उन्हें किञ्चित् भी माया रुपटाई मे दूषित कर दिया जाय तो उनका यथार्थ फल नहीं होता है। इस बात को पुष्ट करने के लिए आठवें अध्ययन में भगवान् मल्लिनाथ का दृष्टान्त दिया गया है।

भगवान् मल्लिनाथ पूर्वभ्रम में महाप्रल नाम के राजा थे। उनके अचल, धरण, पूरण, रसु, वैश्रमण और अभिचन्द्र नाम के छ बालामित्र थे। उन सातों मित्रों ने एक ही माथ दीक्षा ग्रहण की और यह निश्चय किया कि मत्र ही मित्र एक साथ एक मरीखी तपस्या करेंगे। इसके पश्चात् वे जेला तेला आदि तपस्या करते हुए विचरने लगे। आगामी भ्रम में इन छ मित्रों से बड़ा पद पान की इच्छा से महाप्रल मुनि रुपट से अधिक तपस्या करने लगे। वे बेले के दिन तेला और तेले के दिन चोला कर लिया करते थे।

उन सातों मुनियों ने बारह भिक्षु पटिमा अङ्गीकार की। इसके बाद लघुमिह निष्प्रीडित तप क्रिया जिसकी एक परिपाटी में छ महीने और सात दिन लगे अर्थात् १५४ तपस्या के दिन और ३३ पारण्ये के दिन होते हैं। इसके पश्चात् महामिह निष्प्रीडित तप अङ्गीकार किया जिसकी एक परिपाटी में एक वर्ष छ महीने और अठारह दिन लगे अर्थात् ४६७ दिन उपनाम के और ६१ पारण्ये के दिन होते हैं। कुल ५५८ दिन होते हैं। इस प्रकार उग्र तपस्या करके और बीस गोलों में से कई गोलों की उत्प्रेषण द्वारा धना करके महाप्रल मुनि ने तीर्थङ्कर नामकर्म का उपार्जन किया।

तीर्थङ्कर नाम कर्म उपार्जन करने के नीचे गोल ये हैं—

(१) अरिहन्त (२) सिद्ध (३) प्रवचन श्रुतज्ञान (४) गुरु-धर्मो-पदेशक (५) स्थविर (६) बहुश्रुत (७) तपस्वी। इन सात की वत्स-

लता यानी बहुमान पूर्वक भक्ति करने मे । (८) ज्ञान (९) दर्शन (१०) विनय (११) आश्रयक (१२) शीलव्रत इन पाँचा का निर-
तिचार पालन करने मे । (१३) खणलय-सप्रेम, भावना और ध्यान
म । (१४) तप (१५) त्याग (१६) त्रयाप्रच (१७) समाधि (१८)
अपूर्व ज्ञान ग्रहण (१९) श्रुत भक्ति (२०) प्रयत्न प्रभावना ।

इन तीस चीजों की उत्कृष्ट आराधना करने से जीव तीर्थ-
ङ्कर नाम कर्म उपार्जन करता है । इन तीस त्रिला की विस्तृत
व्याख्या छठे भाग ३ बीसव त्रिल संग्रह में दी जायगी ।

प्रत्येक त्रियों तरु श्रमण पर्याय का पालन करके वे देवलोक
म उन्पन्न हुए । वहाँ से चव कर वे छडा मित्र भिन्न भिन्न देश
क रानाओं क यहाँ राजकुमार रूप मे उत्पन्न हुए । महावल राजा
का जीव देवलोक मे चर कर मिथिला नगरी क राजा कुम्भ की
रानी प्रभावती क गर्भ में आया । सुप्त शय्या पर सोती हुई प्रभा-
वती रानी ने निम्न लिखित चौदह महास्वप्न देखे । यथा—गज,
उपम, मिह, अभिषेक, पुष्पमाला, चन्द्र, सूर्य, घञ्जा, कलग, पत्र,
मरोवर, सागर, त्रिमान, रत्तराशि, निर्धूम अग्नि ।

स्वप्न पाठकों से स्वप्नों के फल को सुन कर रानी अतिदुर्षित हुई
और गर्भ का पालन करने लगी । नौ मास पूर्ण होन पर रानी ने
एक पुत्री को जन्म दिया । पुत्री क जन्म से माता पिता को बहुत
प्रमत्तता हुई । तीर्थङ्कर का जन्म हुआ जान कर अनेक देवी और
देवों के साथ इन्द्र वहाँ उपस्थित हुए । यथाविधि जन्म कल्याण
मना कर वे त्रापिस अपन स्थान पर चले गये । माता पिता ने पुत्री
का नाम मल्लिकुं वरी रखा । पाँच धार्यों द्वारा लालन पालन की
जाती हुई मल्लिकुं वरी सुरचित बेल की तरह बढ़ने लगी ।

जब मल्लिकुं वरी की अवस्था लगभग सौ वर्ष की हुई तब एक
नमय उन्होंने अत्रिजान द्वारा अपने पूर्वभव के छ मित्रों को देखा

और जाना कि वे इसी मरुतक्षेत्र में अलग अलग राजाओं के यहाँ राजपुत्र रूप में उत्पन्न हुए हैं ।

मल्लिकु वरी ने होने वाली घटना को जान द्वारा जान कर मल्लिकु वरी ने नौकरों को बुला कर अशोक वाटिका में अनेक स्तम्भों वाला एक मोहनघर बनाने की आज्ञा दी ।

मोहन घर बन जाने के बाद उसके बीच मल्लिकु वरी के आकार वाली एक मोने की प्रतिमा बनवाई । उसके मस्तरु पर एक छिद्र रखा और उस पर एक कमलाकार ढकान लगा दिया । मल्लिकु वरी जो भोजन करती उसमें में एक ग्रास प्रतिदिन उस छिद्र में डाल कर वाष्पित ढकान लगा दिया जाता था । भोजन के सड़ने से उसमें से गाय और सर्प के मृन फलंजर में भी अत्यन्त अधिक दुर्गन्ध उठने लगी ।

मल्लिकु वरी अब पूर्ण यौवन अवस्था को प्राप्त हो चुकी थी । उसके रूप लाक्षण की प्रशंसा चारों तरफ फैल गई ।

उस समय माकेंतपुर नाम का नगर था । वहाँ प्रतिबुद्धि नाम का राजा राज्य करता था । रानी का नाम पद्मावती था । राजा के प्रधान मन्त्री का नाम सुबुद्धि था । वह राजनीति में बड़ा चतुर था ।

एक समय नाग महोत्सव मगान के लिये राजा, रानी और मन्त्री सभी उद्यान में गये । वहाँ राजा ने एक बड़ा सिरिदामगड अर्थात् सुन्दर मालाओं का दण्डाकार समूह देखा । उसे देख कर राजा को बड़ा आश्चर्य हुआ । राजा ने मन्त्री से पूछा कि क्या तुमने कहीं पहले ऐसा सिरिदामगड देखा है । मन्त्री ने उत्तर दिया— राजन् ! एक समय मैं मिथिला गया था । उस समय वहाँ के राजा बुम्भ की पुत्री मल्लिकु वरी का जन्म महोत्सव मनाया जा रहा था । मैं वहाँ एक सिरिदामगड देखा था । पद्मावती रानी का यह सिरिदामगड उसकी शोभा के लाएवें अशु को भी प्राप्त नहीं होता ।

इसके बाद मन्त्री द्वारा की गई मल्लिकु उरी के रूप लाक्षण की प्रशंसा को सुन कर प्रतिगुद्धि राजा ने एक दूत राजा कुम्भ क पाम भेजा और मल्लिकु उरी की मागणी (याचना) की। दूत शीघ्र ही मिथिला के लिये रवाना हो गया।

अङ्गदेश में चम्पा नाम की नगरी थी। वहाँ के राजा का नाम चन्द्रछाय था। उम नगरी में अरण्यक आदि उद्भूत से श्रापक रहते थे। वे नाका द्वारा अपना व्यापार परदेश में करते थे। एक समय अरण्यक श्रापक न दूमर उद्भूत से व्यापारियों के साथ लक्षण समुद्र में यात्रा की। जब जहाज समुद्र के बीच में पहुँच गया तो अरुणल ही में मेघ की गर्जना होने लगी और भयकर विजलियाँ चमकने लगी। इसके पश्चात् हाथ में तलवार लिए एक भयंकर रूप वाला पिशाच उनके मन्सुरा आया और अरण्यक श्रापक से कहने लगा कि हे अरण्यक ! तुझे अपने धर्म में विचलित होना इष्ट नहीं परन्तु मैं तुझे तेरे धर्म से विचलित करूँगा। तू अपने धर्म को छोड़ दे अन्यथा मैं तेरे जहाँ को आसाम में उठा कर फिर समुद्र में पटक दूँगा जिससे तू मर कर आर्त और गीट्र ध्यान करता हुआ दुर्गति को प्राप्त होगा।

पिशाच के उपरोक्त वचनों को सुन कर जहाज में बैठे हुए दूसरे लोग बहुत घबराये और इन्द्र, वैश्रमण, दुर्गा आदि देवों की अनेक प्रकार की मान्यताएँ करने लगे किन्तु अरण्यक श्रापक विश्विन्मात्र भी घबराया नहीं और न विचलित ही हुआ। प्रत्युत अपने वस्त्र से भूमि का प्रमार्जन कर मागारी सथारा करके धर्म ध्यान करता हुआ शान्तचित्त से बैठ गया। इस प्रकार निश्चल बैठे हुए अरण्यक श्रापक की देख कर वह पिशाच अनेक प्रकार के भयोत्पादक वचन कहने लगा। अरण्यक को विचलित न देख पिशाच

को दो अंगुलियों में उठा

और जाना कि वे इसी भरतक्षेत्र में अलग अलग रानाश्यों के यहाँ राजपुत्र रूप से उत्पन्न हुए हैं ।

मन्त्रिण्य में होने वाली घटना को ज्ञान द्वारा जान कर मल्लिकुवरी ने नौकरों को बुला कर अशोक वाटिका में अनेक स्तम्भों वाला एक मोहनघर बनाने की आज्ञा दी ।

मोहन घर बन जान के बाद उसके नीचे मल्लिकुवरी के आकार वाली एक सोने की प्रतिमा बनवाई । उसके मस्तक पर एक छिद्र रखा और उस पर एक झमलाकार ढक्कन लगा दिया । मल्लिकुवरी जो भोजन करती उसमें से एक ग्रास प्रतिदिन उस छिद्र में डाल कर वापिस ढक्कन लगा दिया जाता था । भोजन के सड़न से उसमें से गाय और सर्प के मृत क्लेश से भी अत्यन्त अधिक दुर्गन्ध उठने लगी ।

मल्लिकुवरी अत्र पूर्ण यौवन अग्रस्था को प्राप्त हो चुकी थी । उसके रूप लाभण्य की प्रशंसा चारों तरफ फैल गई ।

उस समय साकेतपुर नाम का नगर था । वहाँ प्रतिबुद्धि नाम का राजा राज्य करता था । रानी का नाम पद्मावती था । राजा के प्रधान मन्त्री का नाम सुबुद्धि था । वह राजनीति में बड़ा चतुर था ।

एक समय नाग महोत्सव मनाने के लिये राजा, रानी और मन्त्री सभी उद्यान में गये । वहाँ राजा ने एक बड़ा सिरिदामगड अर्थात् सुन्दर मालाश्यों का दण्डाकार समूह देखा । उसे देख कर राजा को बड़ा आश्चर्य हुआ । राजा ने मन्त्री से पूछा कि क्या तुमने कहीं पहले ऐसा सिरिदामगड देखा है । मन्त्री ने उत्तर दिया— राजन् ! एक समय मैं मिथिला गया था । उस समय वहाँ के राजा कुम्भ की पुत्री मल्लिकुवरी का जन्म महोत्सव मनाया जा रहा था । मैं वहाँ एक सिरिदामगड देखा था । पद्मावती रानी का यह सिरिदामगड उसकी शोभा के लासवें अश को भी प्राप्त नहीं होता ।

इसके बाद मन्त्री द्वारा की गई मल्लिकुंवरी के रूप लाक्षण्य की प्रशंसा को सुन कर प्रतिजुद्धि राजा ने एक दूत राजा कुम्भर पास भेजा और मल्लिकुंवरी की मागणी (याचना) की। दूत शीघ्र ही मिथिला के लिये रवाना हो गया।

अङ्गदेश में चम्पा नाम की नगरी थी। वहाँ के राजा का नाम चन्द्रधाय था। उस नगरी में अरण्यक आदि बहुत से श्रावक रहते थे। वे नौका द्वारा अपना व्यापार परदेश में करते थे। एक समय अरण्यक श्रावक न दूसरे बहुत से व्यापारियों के साथ लवण समुद्र में यात्रा की। जब जहाज समुद्र के बीच में पहुँच गया तो प्रकाल ही में मेघ की गर्जना होने लगी और भयकर विजलियाँ चमकने लगीं। इसके पश्चात् हाथ में तलवार लिए एक भयकर रूप वाला पिशाच उनके मन्मुख आया और अरण्यक श्रावक से कहने लगा कि हे अरण्यक ! तुम्हें अपने धर्म में विचलित होना इष्ट नहीं परन्तु मैं तुम्हें तेरे धर्म से विचलित करूँगा। तू अपने धर्म को छोड़ दे अन्यथा मैं तेरे जहान को आकाश में उठा कर फिर समुद्र में पटक दूँगा जिससे तू मर कर आर्त और रौद्र ध्यान करता हुआ दुर्गति को प्राप्त होगा।

पिशाच के उपरोक्त वचनों को सुन कर जहाज में बैठे हुए दूसरे लोग बहुत घबराये और इन्द्र, वैश्रमण, दुर्गा आदि देवों की अनेक प्रकार की मान्यताएँ करने लगे किन्तु अरण्यक श्रावक विश्विन्मात्र भी घबराया नहीं और न विचलित ही हुआ। प्रत्युत अपने वस्त्र से भूमि का प्रमार्जन करके मागारी सथारा करके धर्म ध्यान करता हुआ शान्तचित्त से बैठ गया। इस प्रकार निश्चल बैठे हुए अरण्यक श्रावक को देख कर वह पिशाच अनेक प्रकार के भयोत्पादक वचन कहने लगा। अरण्यक को विचलित न होते देख पिशाच उस जहाज को दो अगुलियों में उठा कर आकाश

में बहुत ऊंचा ल गया और अरण्य श्रावक में फिर इसी प्रकार रहने लगा कि तू अपने धर्म को छोड़ दे। किन्तु वह अपने धर्म से विश्रित भी उलायमान नहीं हुआ। अरण्य श्रावक को इस प्रकार अपने धर्म में दृढ़ देख कर वह पिशाच शान्त हो गया। अपना असली देवधरूप धारण करके वह अरण्य श्रावक के सामने हाथ जोड़ कर उपस्थित हुआ और कहने लगा कि—पूज्य! आप धन्य हैं। आपका जन्म सफल है। आप देवममा के अन्दर शक्रेन्द्र ने आपकी धार्मिक दृढ़ता की प्रशंसा की कि जीवानीनादिन नय तच्च का ज्ञाता अरण्य श्रावक अपने धर्म के विषय में इतना दृढ़ है कि उसका देव दानव भी निर्ग्रन्थ प्रयत्न में विचलित करने में और समर्पित से भ्रष्ट करने में समर्थ नहीं है। मुझे शक्रेन्द्र के वचन पर विश्वास नष्ट आया। अतः मैं आपकी धार्मिक दृढ़ता की परीक्षा करने के लिए यहाँ आया था।

“देवानुश्रिय ! जिम तरह शक्रेन्द्र ने आपकी प्रशंसा की थी वास्तव में आप जैसे ही हैं।” मैंने जो आपको कष्ट किया उसके लिए आपसे क्षमा चाहता हूँ। मेरे अपराध को आप क्षमा करें, इस प्रकार वह अपने अपराध की क्षमा याचना करके अरण्य श्रावक की सेवा में कूएडलों की जोड़ी रख कर अपने स्थान को उला गया। अपने आप को उपमर्ग रहित समझ कर अरण्य श्रावक ने साउमगग खोला और सागारी संथार को पार लिया। इसके बाद वे अरण्य आदि सभी नौगणिक दक्षिण दिशा में स्थित मिथिला नगरी के अन्दर आये। अरण्य ने राजा कुम्भ को बहुत सा द्रव्य और एक कूएडल जोड़ी भेंट की। राजा कुम्भ को वह कूएडल जोड़ी बहुत पसन्द आई और उसी समय मल्लिकुंजरी को बुला कर उसे पहना दी। अरण्य आदि व्यापारियों का बहुत आदर भक्तार किया और उनका राज्य महसूल माफ कर दिया।

न्यापारियों ने अपना माल बेचा और वहाँ से नया माल खरीद कर जहान में भर लिया। मगदूर यात्रा करते हुए वे चम्पा नगरी पहुँचे। वहाँ के राजा चन्द्रछाय के पूछने पर उन न्यापारियों ने मल्लिकुवरी के रूप लावण्य का वर्णन किया। उमें सुन कर चन्द्रछाय राजा ने अपना एक दूत कुम्भ राजा के पास भेजा कि मल्लिकुवरी का विवाह उमके साथ कर दे।

कुणाल देश में श्रावस्ती नगरी थी। वहाँ रूपी नाम का राजा राज्य करता था। उमकी रानी का नाम धारिणी और पुत्री का नाम सुनाहुकुमारी था। एक समय राना ने बड़ी धूमधाम में सुनाहुकुमारी का स्नान महोत्सव मनाया। राजा ने अपने मंत्री वर्षधर से पूछा कि इसमें पहिल तुमने रुई ऐसा स्नान महोत्सव देखा है? मन्त्री ने उत्तर दिया— मिथिला के राजा कुम्भ की पुत्री मल्लिकुवरी का स्नान महोत्सव देखा था। यह उसके लाखवें अंश को भी प्राप्त नहीं होता है।

मन्त्री द्वारा की गई मल्लिकुवरी के रूप लावण्य की प्रशंसा को सुन कर राजा उसे प्राप्त करने के लिये आनुर होगया। तत्काल एक दूत को बुला कर राना ने उमें मिथिला भेजा और मल्लिकुवरी की मागणी (याचना) की। दूत मिथिला के लिए रवाना होगया।

एक समय मल्लिकुवरी के कानों के दिव्य कुण्डलों की सन्धि खुल गई। राजा कुम्भ ने शहर के सारे सुनारों को बुलाया और उन टूटे हुए कुण्डलों की सन्धि जोड़ने के लिये कहा। सुनारों ने बहुत प्रयत्न किया किन्तु वे कुण्डलों की सन्धि नहीं जोड़ सके। राजा के पास आकर वे कहने लगे— राजन्! यदि आप आज्ञा दें तो हम नये कुण्डल बना सकते हैं किन्तु इन टूटे हुए कुण्डलों की सन्धि जोड़ने में

सुनारों की बात सुन कर राजा ने राज्य में निराल जान

दे दी। वे सब सुनार मिथिला में निरल कर वाराणसी नगरी में आये। वहाँ के राजा शय के पाम जाकर वाराणसी में रहने की आना मागी। राजा ने उनमें देशनिकाला देने का कारण पूछा। सुनारों ने सारा वृत्तान्त कहा और मल्लिकु वरी के रूप लाक्षण की प्रशंसा की। उसे सुन कर मल्लिकु वरी के साथ विवाह करने की इच्छा से राजा शय ने एक दूत मिथिला भेजा।

मिथिला के राजा कुम्भ के पुत्र का नाम मल्लदिन था। वह युवराज था। एक समय शहर के सब चित्रकारों को बुला कर मल्लदिन कुमार ने अपने सभाभवन को चित्रित करने की आता दी। चित्रकारों ने राजकुमार की आज्ञा स्वीकार कर अपना काम शुरु कर दिया।

उन सब चित्रकारों में एक चित्रकार को ऐसी लब्धि थी कि किसी भी पदार्थ का एक अवयव देख कर मार का दृष्ट चित्र बना सकता था। एक समय महल में बैठे हुई मल्लिकु वरी के पैर का अगूठा चित्रकार की नजरों में पड गया। उसने लब्धि के प्रभाव में मल्लिकु वरी का दृष्ट चित्र सभाभवन में चित्रित कर दिया। जब सभाभवन पूरा चित्रित होगया तो राजकुमार उम देखने कलिये आया। विविध प्रकार के चित्रों को देख कर वह बहुत प्रमत्त हुआ। आगे बढ़ने पर उमने अपनी बड़ी बहिन मल्लिकु वरी का चित्र देखा। उसे देख कर वह उम चित्रकार पर कुपित होगया। उसने उम चित्रकार को अपने राज्य में निरल जाने की आज्ञा दी। वह चित्रकार मिथिला में निरल कर हस्तिनापुर में आया। वहाँ के राजा अदीनशत्रु के पाम जाकर उमने वहाँ रहने की आज्ञा मागी। राजा के पूछन पर चित्रकार ने अपना सारा वृत्तान्त कहा और मल्लिकु वरी का चित्र उम बताया। चित्र को देख कर राजा उम पर मोहित होगया। मल्लिकु वरी के साथ विवाह करने की इच्छा में राजा ने अपना एक दूत मिथिला की भेजा।

एक समय चोला नाम की परित्राजिका मिथिला नगरी में आई। मल्लिकुंजरी के पास आकर शुचि धर्म का उपदेश देने लगी। उसने मतलाया कि हमारे धर्मानुसार अपवित्र वस्तु की शुद्धि जल और मिट्टी द्वारा होती है। मल्लिकुंजरी ने कहा—परित्राजिके! रुधिर में लिप्त वस्त्र को रुधिर में धोने पर क्या उसकी शुद्धि हो सकती है? परित्राजिका ने कहा—नहीं। मल्लिकुंजरी ने कहा—इसी प्रकार हिंसा में हिंसा की (पाप स्वानों की) शुद्धि नहीं हो सकती। मल्लिकुंजरी का युक्ति पूर्ण उचन सुन कर चोला परित्राजिका निरुत्तर हो गई। मल्लिकुंजरी का दामियों ने उमका उपहान किया। इसमें क्रोधित होकर चोला परित्राजिका यहाँ में निरल गई। यह कम्पिलपुर के राजा जितशत्रु के अन्तपुर में गई। राजा ने उमका आदर सत्कार किया। इसके पश्चात् राजा ने उससे पूत्रा परित्राजिके! तुम बहुत जगह घूमती हो। मेरे जैमा अन्तपुर तुम न कहीं देखा है? परित्राजिका ने कहा—राजन! आप कृपमण्डूक प्रवीत होते हैं। मैंने मिथिला के राजा कुम्भ की पुत्री मल्लिकुंजरी को देखा है। वह देवकन्या के समान सुन्दर है। आपका मारा अन्तपुर उसके पैर के अग्रूठे की शोभा को भी प्राप्त नहीं हो सकता।

मल्लिकुंजरी के रूप लाभय की प्रशंसा सुन कर राजा जितशत्रु ने अपना एक दूत राजा कुम्भ के पास मिथिला भेजा और मल्लिकुंजरी की मागणी (याचना) की।

यहाँ राजा के दूत एक साथ मिथिला में पहुँचे और अपने अपने राजा का सन्देश कुम्भ राजा को कह सुनाया। एक कन्या के लिए छ राजाओं की मागणी देख कर कुम्भ राजा को क्रोध आगया। दूतों का अपमान करके उन्हें अपने नगर से बाहर निकाल दिया। अपमानित होकर दूत वापिस चले गये। उन्होंने जाकर मारा वृत्तान्त अपने अपने राजा में कहा। इसमें वे यहाँ राजा

कुपित हुए और अपनी अपनी मना मना कर राजा वृष्म के ऊपर चढ़ाई कर दी। इस वृत्तान्त को सुन कर राजा वृष्म घबराया। मल्लिकुंजरी ने अपने पिता को आश्वासन दिया और कहा कि आप घबराइये नहीं। मैं सब को समझा दूँगी। आप मन रानाओं के पास पृथक् पृथक् दूत भेज दीनिष्ण कि शाम को तुम मोहन घर में चले आओ। मैं तुम्हें मल्लिकुंजरी दूँगा। राजा वृष्म ने ऐसा ही किया। पृथक् पृथक् द्वार से वे छहों राजा शाम को मोहन घर में आगये। मल्लिकुंजरी न पटल म मोहन घर में अपने आजारगाली सोने की पुतली बना रखी थी जिसमें ऊपर से छिद्र से प्रतिदिन मोहन का एक एक ग्राम डाला था। उस मुर्ख की पुतली को देख कर वे छहों राजा उसे साक्षात् मल्लिकुंजरी समझ कर उस पर मोहित होगये। इसी समय मल्लिकुंजरी ने उस पुतली के दबन को उपाड़ दिया जिससे उसमें डाल हुए अन्न की अत्यन्त दुर्गन्ध बाहर निकली। उस दुर्गन्ध को न सह सकने के कारण वे छहों राजा पराङ्मुख होकर बैठ गये। इस अवसर को उपयुक्त समझ कर मल्लिकुंजरी ने उनको शरीर की अशुचिता बतलाते हुए धर्मोपदेश दिया और अपने पूर्वभय का वृत्तान्त कहा जिसे सुन कर उन छहों राजाओं को जातिस्मरण ज्ञान उत्पन्न होगया। छहों राजाओं ने अपने अपने ज्येष्ठ पुत्र का राज्याभिषेक कर भगवान् मल्लिनाथ से माथ प्रत्रज्या अर्पण कर ली। वर्षादान देने के पश्चात् भगवान् मल्लिनाथ ने पौष शुक्ला एकादशी को प्रातः काल दीक्षा ली और दूमरे पहर में उन्हें वैश्वज्ञान उत्पन्न हो गया।

भगवान् मल्लिनाथ के २८ गण थे और २८ ही गणधर थे। चालीस हजार साधु, पचपन हजार साध्वियाँ, एक लाख चौरासी हजार श्रावक, तीन लाख पैंसठ हजार श्राग्निर्ण थीं। छः सौ चौदह पूर्वधारी साधु, दो हजार अवधिज्ञानी, ३२०० वैश्वज्ञानी, ३५००

सक्रियरू लब्धिधारी, ८०० मनःपर्ययज्ञानी, १४०० वादी, २००० अनुत्तर विमानवामी हुए ।

भगवान् मल्लिनाथ को केवलज्ञान होने के दो वर्ष बाद उनके शासन में से जीव मोक्ष जाने लगे और उनके निर्माण के पश्चात् पीम पाट तक जीव मोक्ष में जाते रहे । भगवान् मल्लिनाथ का शरीर पश्चिम धनुष ऊँचा था, शरीर का वर्ण प्रियगु समान नीला था ।

केवलज्ञान होने पर वे धर्मोपदेश करते हुए और अनेक भक्त-प्राणियों का उद्धार करते हुए निचरते रहे । भगवान् मल्लिनाथ सौ वर्ष तक गृहस्थावास (छद्मस्थावस्था) में रहे । सौ वर्ष कम पचपन हजार वर्ष श्रमण पर्याय और केवल पर्याय का पालन कर ग्रीष्म ऋतु में समेदशिखर पर्वत पर पधारे और पादपोषगमन सथारा किया । उनके साथ पाँच सौ साधुओं और पाँच सौ भाद्रियों न भी सथारा किया । चैत्र शुक्ला चौथ के दिन अर्ध-रात्रि के समय भरणी नक्षत्र का चन्द्रमा के साथ योग होने पर वेदनीय, आयुष्य नाम, गोत्र इन चार अघाती कर्मों का नाश कर भगवान् मल्लिनाथ मोक्ष पधार गये ।

(९) जिनपाल और जिनरक्ष की कथा

नरा 'भाकडी ज्ञात' अध्ययन-काम भोगों में लिप्त रहन वाले पुरुष को दुःख की प्राप्ति होती है और काम भोगा में विरक्त पुरुष को सुख की प्राप्ति होती है । इस निषय की पुष्टि के लिए इस अध्ययन में जिनपाल और जिनरक्ष का दृष्टान्त दिया गया है ।

चम्पा नगरी में भाकडी नाम का सार्धवाह रहता था । उसके जिनपाल और जिनरक्ष नाम के दो पुत्र थे । उन दोनों भाइयों ने ग्यारह वक्त लक्षण समुद्र में यात्रा कर व्यापार द्वारा बहुत सा द्रव्य उपार्जन किया था । माता पिता के पर भी वे दोनों

लगण समुद्र में नारहवीं उक्त यात्रा करने के लिए रवाना हुए। जन जहान समुद्र के बीच में पहुँचा तो तूफान में नष्ट हो गया। जहान का टूटा हुआ एक पाटिया उन दोनों भाइयों के हाथ लग गया। निम पर बैठ कर तैरते हुए वे दोनों रत्नद्वीप में जा पहुँचे। उस द्वीप की स्वामिनी रयणा देवी ने उन्हें देखा। वह उनमें कहने लगी कि तुम दोनों मर माथ कामभोग भोगते हुए यहाँ रहो अन्यथा मैं तुम्हें मार दूँगी। इस प्रकार उस देवी के भयप्रद वचनों को सुन कर उन्होंने उसकी बात स्वीकार कर ली और उससे साथ कामभोग भोगते हुए रहने लगे।

एक समय लगण समुद्र के अधिष्ठात्यक सुस्थित देव ने रयणा देवी को लगण समुद्र की इषीम नार परिक्रमा करके वृण, पर्ण, काष्ठ, कचरा, अशुचि आदि को माफ करने की आज्ञा दी। तब उस देवी ने उन दोनों भाइयों को कहा—देवानुप्रियो! मैं आपिम लोट कर आऊँ तब तब तुम यहाँ पर आनन्द पूर्वक रहो। यदि इच्छा ही तो पूर्व, पश्चिम और उत्तर दिशा के वनखण्ड में जाना किन्तु दक्षिण दिशा के वन खण्ड (वगीच) में मत जाना। वहाँ पर एक भयकर विषवारी सर्प रहता है वह तुम्हारा विनाश कर डालेगा। ऐसा कह कर देवी चला गई। वे दोनों भाइयों पून, पश्चिम और उत्तर दिशा के वनखण्ड में जान कर बाद दक्षिण दिशा के वनखण्ड में भी गए। उसमें अत्यन्त दुःख और आ रही थी। उसमें अन्दर जाकर देखा कि सैफड़ा मनुष्यों की हड्डियाँ का ढेर लगा हुआ है और एक पुस्तक शूली पर लटक रहा है। यह हाल देख कर वे दोनों भाई बहुत घबराए और शूली पर लटकते हुए उस पुस्तक से उसका वृत्तान्त पढ़ा। उसमें कहा कि मैं भी तुम्हारी तरह जहाज से टूट जाने से यहाँ आ पहुँचा था। मैं काकन्दी नगरी का रहने वाला घाड़ों का व्यापारी हूँ। पहल यह देवी मेरे साथ कामभोग भोगती रही।

एक समय एक छोटे से अपराध के ही जान पर कुपित होकर
 इम ने मुझे यह दण्ड दिया है । न मालूम यह देवी तुम्हें किम
 समय और किस ढंग से मार दगी । पहले भी कई मनुष्यों को
 मार कर यह हड्डियों का ढेर कर रहा है ।

शूली पर लटकते हुए पुरुष के उपरोक्त वचना को सुन कर
 दोनों भाई बहुत भयभीत हुए और वहाँ से भाग निकलने का
 उपाय पूछने लगे । तब यह पुरुष कहन लगा कि पूर्व दिशा में
 खण्ड म शैलक नाम का एक यज्ञ रहता है । उसकी पूजा करने से
 प्रमत्त होकर वह तुम्हें इस देवी से फन्दे में छुड़ा देगा । यह सुन कर
 वे दोनों भाई यज्ञ के पाम जाकर उसकी स्तुति करने लगे और उस
 देवी के फन्दे से छुड़ाने की प्रार्थना करने लगे । उन पर प्रमत्त
 होकर यज्ञ कहन लगा कि मैं तुम्हें तुम्हारे इच्छित स्थान पर पहुँचा
 दूँगा । किन्तु मार्ग में वह देवी आकर अनेक प्रकार के हावभाव
 करके अनुरक्त प्रतिकूल वचन कहती हुई परिपक्व उपसर्ग देगी ।
 यदि तुम उससे कहने में आकर उसमें आमक्त हो जाओगे तो मैं
 तुम्हें मार्ग में ही अपनी पीठ पर से फेंक दूँगा । यज्ञ की इस
 शर्त का उन दोनों भाइयों ने स्वीकार किया । यज्ञ ने अथवा का रूप
 बनाया और दोनों भाइयों को अपनी पीठ पर बैठा कर आकाश
 मार्ग में चला । इतने में वह देवी आ पहुँची । उनको वहाँ न देख
 कर अविज्ञान में शैलक यज्ञ की पीठ पर जाते हुए देखा ।
 वह शीघ्र वहाँ आई और अनेक प्रकार से हावभाव पूर्वक अनुरक्त
 प्रतिकूल वचन कहती हुई वरुण विलाप करने लगी । जिनपाल
 ने उससे वचनों पर कोई ध्यान नहीं दिया किन्तु जिनरत्न उसके
 वचनों में फँस गया । वह उस पर मोहित होकर प्रेम के साथ रचना
 देवी को देखने लगा । जिनम उस यज्ञ ने अपनी पीठ पर से फेंक
 दिया । नीचे गिरते हुए जिनरत्न को उस देवी ने शूली में पिसी दिया

और बहुत रूप तेर उमे प्राण रहित करके समुद्र में डाल दिया। जिनपाल देवी के वचनों में नहीं फंसा इसलिए यक्ष ने उसको आनन्द पूर्वक चम्पा नगरी में पहुँचा दिया। वहाँ पहुँच कर जिनपाल अपने माता पिता से मिला। कई वर्षों तक मांमारिक सुख भोग कर प्रव्रज्या अङ्गीकार की। कई वर्षों तक मयम का पालन कर माधर्म देवलोक में उत्पन्न हुआ। वहाँ का आयुष्य पूरा कर महा-विदेह क्षेत्र में उत्पन्न होकर सिद्ध, बुद्ध यावत मुक्त होगा।

अन्त में श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने अपने मुनियों को सम्बोधित कर फरमाया कि— श्रमणो ! जो प्राणी छोटे हुए काम भोगों की फिर से इच्छा नहा करते वे जिनपाल की तरह शीघ्र ही समार रूपी समुद्र को पार कर सिद्ध पद को प्राप्त करते हैं और जो प्राणी रयणा देवी सरीखी अतिरिक्ति में काम कर काम भोगों में आसक्त हो जाते हैं वे जिनरक्ष की तरह समार रूपी समुद्र में पड़ कर अनन्त काल तक जन्म मरण के दुःखों का अनुभव करते हुए परिश्रमण करते हैं। ऐसा ममक कर समुच्च आत्माओं को काम भोगों से निवृत्ति करनी चाहिए।

(१०) चन्द्रमा का दृष्टान्त

दसवा 'चन्द्र वात' अध्ययन—प्रमादी जीवाँ के गुणाँ की हानि और अप्रमादी जीवाँ के गुणों की वृद्धि होती है। यह रताने क लिए गौतम स्वामी द्वारा किय गय प्रश्न के उत्तर में श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने चन्द्रमा का दृष्टान्त दिया। यथा—

पूरुणिमा के चन्द्रमा की अपेक्षा ऋण पक्ष की प्रतिपदा का चन्द्रमा हीन होता है। उसकी अपेक्षा द्वितीया का चन्द्रमा और हीन होता है। इस प्रकार व्रमश हीनता को प्राप्त होता हुआ चन्द्रमा अमावस्या को सब प्रकार से हीन होजाता है अथात् अमावस्या का चन्द्रमा

सर्वथा प्रकाश शून्य हो जाता है ।

इसी प्रकार जो साधु क्षमा मार्दन आदि तथा ब्रह्मचर्य के गुणों में शिथिलता को प्राप्त होता जाता है वह अन्त में ब्रह्मचर्य आदि के गुणों में सर्वथा भ्रष्ट होजाता है ।

जिस प्रकार अमावस्या के चन्द्रमा की अपेक्षा शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा का चन्द्रमा प्रकाश में कुछ अधिक होता है । प्रतिपदा की अपेक्षा द्वितीया का चन्द्रमा और त्रिंशेष प्रकाशमान होता है । इस तरह क्रमशः बढ़ते बढ़ते पूर्णिमा को अखण्ड और पूर्ण प्रकाशमान मन जाता है ।

इसी प्रकार जो साधु अप्रमादी मन कर अपन क्षमा आदिक्रियान्त ब्रह्मचर्य के गुणों को बढ़ाता है वह अन्त में जाकर सम्पूर्ण आत्मिक गुणों से युक्त हो जाता है और मोक्ष को प्राप्त कर लेता है ।

(११) दाम्द्रव वृक्ष का दृष्टान्त

ग्यारहवा 'दाम्द्रव ज्ञात' अध्ययन— धर्म मन्वन्धी मार्ग की आराधना करने वाले को सुख की प्राप्ति और विराधना करने वाले को दुःख की प्राप्ति होती है । इसलिए इस अध्ययन में दाम्द्रव वृक्ष का दृष्टान्त दिया गया है ।

समुद्र के किनारे 'दाम्द्रव' नाम के एक तरह के वृक्ष होते हैं । उनमें से कुछ ऐसे होते हैं जो समुद्र की हवा लगने से मुरझा जाते हैं । कुछ ऐसे होते हैं जो द्वीप की हवा लगने से मुरझा कर सूख जाते हैं । कुछ ऐसे होते हैं जो द्वीप और समुद्र दोनों की हवा से नहीं घसते और कुछ ऐसे होते हैं जो दोनों की हवा न सह सकने के कारण सूख जाते हैं । इस दृष्टान्त के अनुसार माधुओं की चतुर्भङ्गी बतलाई गई है । यथा—

होते हैं जो माधु, साध्वी,

स्व स्वतीर्थियों के उठोर वचनों को महन कर लेते हैं परन्तु अन्य तीर्थियों के वचनों को महन नहीं करते। एम माधु देवगिराधक कहलाते हैं। जो माधु अन्य तीर्थियों के तथा गृहस्थों के कहे हुए उठोर वचनों का महन करते हैं किन्तु स्वतीर्थियों के उठोर वचनों को महन नहीं करन के उग आराधक कहलाते हैं। जो साधु स्वतीर्थियों और अन्य तीर्थियों किसी के भी उठोर वचनों का महन नहीं करते वे सर्वगिराधक कहे जाते हैं। जो साधु स्वतीर्थियों और अन्य तीर्थियों दोनों के उठोर वचना को समभाव से महन करते हैं वे सर्व आराधक कह जाते हैं।

उपरोक्त दृष्टान्त बर यह बतलाया गया है कि जीवा को आराधक बनना चाहिए, गिराधक नहीं। आराधक बनने में ही जीव का कल्याण होता है।

(१२) पुद्गलो के शुभाशुभ परिणाम

राजहाराँ 'उदर वात' अध्ययन—स्वभाव में मलिन चित्त वाले भी भव्य प्राणी मद्गुरु की सेवा में चारित्र्य के आराधक बन जाते हैं। पुद्गल किम प्रकार शुभाशुभ रूप में परिवर्तित हो जाते हैं इस बात को बतलाने के लिए हम अध्ययन में जल का दृष्टान्त लिया गया है।

चम्पा नगरी में चित्तशत्रु राजा राज्य करता था। उससे सुशुद्धि नामक मन्त्री था। वह जीवाचीनादि नवतन्त्रा का जानकार था। एक समय भोजन करने के पश्चात् राजा ने उस भोजन के वण, गन्ध, रस, स्पर्श आदि की बहुत तारीफ की। राज परिवार में भी राजा के करने का अनुमोदन किया किन्तु सुशुद्धि मन्त्री उस समय मौन रहा। तब राजा ने उससे इसका कारण पूछा तो मन्त्री ने जवाब दिया कि इसमें तारीफ की क्या बात है ? प्रयोग

विशेष न शुभ पुद्गल अशुभ और अशुभ पुद्गल शुभ रूप से परि-
णत हो सकते हैं। राजा ने मन्त्री के इन वचनों को सत्य नहीं माना।

एक समय सुबुद्धि मन्त्री के माथ राजा बाहर घूमने गया।
नगर के गहर एक खाई के अति दुर्गन्धित जल को देख कर राजा
ने उस जल की निन्दा की। दूसरे लोगों ने भी राजा के कथन का
समर्थन किया। मन्त्री को मोन देख कर राजा ने इसका कारण
पूछा। मन्त्री ने वही पूर्वोक्त जवाब दिया। राजा ने मन्त्री के कथन
को सत्य नहीं माना। अपने वचन को सत्य सिद्ध करने के लिए
और राजा को तत्त्व का ज्ञान कराने के लिए मन्त्री ने उसी खाई
से जल मंगाया और एक अच्छे वर्तन में डाला। फिर अनेक प्रयोग
करके उस जल को शुद्ध और अति सुगन्धित बनाया। जलरक्षक
के साथ उस जल को राजा के पास भेजा। उस जल को पीकर
राजा बहुत खुश हुआ और जलरक्षक से पूछा कि यह जल कहाँ
से आया? उसने उत्तर दिया कि सुबुद्धि मन्त्री ने मुझे यह जल
दिया है। तब राजा ने मन्त्री से पूछा। मन्त्री ने जवाब दिया कि
यह जल उसी खाई का है। प्रयोग करके मैंने इसको इतना श्रेष्ठ
और सुगन्धित बनाया है। राजा को मन्त्री के वचनों पर विश्वास
आ गया। उसने मन्त्री से धर्म का तत्त्व पूछा। मन्त्री ने राजा को
धर्म का तत्त्व बड़ी खूबी से समझाया। कुछ समय पश्चात् राजा और
मन्त्री दोनों को संसार में विरक्ति हो गई और दोनों ने प्रज्या
अङ्गीकार कर ली। ग्यारह अङ्ग का ज्ञान पढ़ा और बहुत वर्षों तक
श्रमण पर्याय का पालन कर सिद्ध, उद्ध यावत् मुक्त हुए।

जल के दृष्टान्त का अभिप्राय यह है कि खाई के पानी की
तरह पापी जीव भी भद्गुरु की मंगति करने से अपना आत्म-
कल्याण करने में समर्थ हो सकते हैं।

(१३) नन्द मणियार की कथा

तेरहवाँ "दुर्दुर ज्ञात" अर्थात् -सद्गुरु का अभाव में तप, नियम, व्रत, पञ्चक्राण्य आदि गुणों की हानि होती है। इस बात को मतलाने के लिए दुर्दुर (मेंढक) का दृष्टान्त दिया गया है।

एक समय ग्रामानुग्राम विहार करते हुए भगवान् महावीर राजगृह नगर में पधारं। उस समय दुर्दुर नाम का देव सूर्याभि देव में समान नाट्यप्रतिधि दिखला कर और भगवान् को वन्दना नमस्कार करके वापिस अपने स्थान को चला गया। उसकी श्रद्धा के धारे में गौतम स्वामी ने प्रश्न पूछा। तब भगवान् न उमका पूर्वभय फरमाया-

राजगृह नगर में नन्द नाम का मणियार रहता था। उपदेश सुन कर वह श्रावक बन गया। श्रावक बनने के बाद बहुत समय तक साधुओं का समागम नहीं होने से तथा मिथ्यात्वियों का परिचय होते रहने से वह मिथ्यात्वी बन गया। एक समय ग्रीष्म ऋतु में तेला करके वह मौपघात कर रहा था। उस समय तृपा का परिपह उत्पन्न हुआ जिससे उसकी यह भावना होगई कि जो लोग कुआ, बागड़ी आदि खुदवाते हैं और जहाँ अनेक प्यास आदमी पानी पीकर अपनी प्यास बुझाते हैं वे लोग धन्य हैं। अतः मुझे भी ऐसा ही करना श्रेष्ठ है। प्रातः काल पारणा करन के बाद राजा की शाना लेकर नगर के बाहर एक विशाल बावड़ी खुदवाई और बाग, बगीचे, चित्रशाला, भोजनशाला, वैद्यकशाला अलङ्कार सभा आदि बनवाई। उनका उपयोग नगर के सब लोग करने लगे और नन्द मणियार भी प्रशंसा करने लगे। अपनी प्रशंसा सुन कर वह अत्यन्त प्रसन्न होन लगा। उसका मन दिन रात बावड़ी में रहन लगा। वह उमी में आसक्त होगया। एक समय नन्द मणियार के शरीर में स्वाम, खासी, कोढ़ आदि सोलह

गग उत्पन्न हुए। चिकित्सा शास्त्र में प्रवीण वैद्यों ने अनेक तरह में चिकित्सा की किन्तु उनमेंसे एक भी रोग शान्त नहीं हुआ। अन्त में आर्त्त ध्यान ध्याते हुए उसने तिर्यञ्च गति का आयुष्य चाँपा तथा मरने पर मूर्च्छा के कारण उसी नापट्टी में मेंढक रूप में उत्पन्न हुआ। उम घापट्टी के जल का उपयोग करने वाले लोगों के मृत्यु में नन्द मणियार की प्रेरणा सुन कर उस मेंढक को जातिस्मरण ज्ञान उत्पन्न हो गया। उसने अपने पूर्वज के कार्य का स्मरण किया। मिथ्यात्व का पश्चात्ताप करके मेंढक के मन में भी उसने श्रावक व्रत श्रद्धाकार किये और धर्म ध्यान की भावना भाते हुए रहने लगा। एक समय मेरा (भगवान् महा-शैर स्वामी का) आगमन राजगृह में हुआ, उम समय पानी भरने के लिए नापट्टी पर गई हुई स्त्रियों के मुख में इम बात को सुन कर वह मेंढक मुझे वन्दना करने के लिए बाहर निकला। रास्ते में मुझे वन्दना करने के लिए आते हुए श्रेणिक राजा के घोड़े के पैर नीचे दब कर वह मेंढक घायल हो गया। उसी समय रास्ते के एक तरफ जाकर उसने वहाँ से मुझे वन्दना नमस्कार कर सले खना मथारा किया। शुभ ध्यान धरता हुआ वहाँ से मर कर सौरभ देवलोक में ददुराजतमक विमान में ददुर नाम का देव हुआ है। यहाँ से चय कर महाविदेह क्षेत्र में उत्पन्न होगा और प्रज्या श्रद्धाकार कर मोक्ष में जायगा।

उम दृष्टान्त का अभिप्राय यह है कि समन्वित आदि गुणों का प्राप्त कर लने पर भी यदि प्राणियों को श्रेष्ठ साधुओं की मगति न मिले तो नन्द मणियार की तरह गुणों की हानि हो जाती है। अतः भव्य प्राणियों को साधु समागम का लाभ मदा लेते रहना चाहिए।

(१४) तेतली पुत्र की कथा

चौदहवा 'तेतली ज्ञात' अध्ययन-धर्म की अनुकूल सामग्री मिलने में ही धर्म की प्राप्ति होती है। इस बात को बतलाने के लिए इस अध्ययन में तेतली पुत्र नाम के मन्त्री का दृष्टान्त दिया गया है।

तेतलीपुर नगर में जनकरथ राजा राज्य करता था। उसकी रानी का नाम पद्मावती था। तेतली पुत्र नाम का मन्त्री था। वह राजनीति में अति निपुण था। उसकी स्त्री का नाम पोट्टिला था। जनकरथ राजा राज्य में अत्यन्त आमक्त एव गृह होने के कारण अपन उत्पन्न होने वाले सब पुत्रों के अङ्गों को विहृत करके उनको राज्य पद के अयोग्य बना देता था। इस बात से रानी अति दुःखित थी। एक समय उसने अपने मन्त्री में मलाह की और उत्पन्न हुए एक पुत्र को गुप्त रूप से तत्काल मन्त्री के घर पहुँचा दिया। मन्त्री के घर वह आनन्द पूर्वक बढ़न लगा। उसका नाम जनकरथ रखा गया। वह कलाओं में निपुण होकर यौवन अवस्था को प्राप्त हुआ।

तेतली पुत्र मन्त्री अपनी पोट्टिला भार्या के साथ आनन्द पूर्वक जीवन व्यतीत करता था किन्तु किसी कारण से कुछ समय के पश्चात् वह पोट्टिला तेतलीपुत्र को अप्रिय और अनिष्टकारी होगई। वह उसका नाम सुनने में भी घृणा करने लगा। यह देख पोट्टिला अति दुःखिन होकर आर्चध्यान करने लगी। तब तेतलीपुत्र ने उस से कहा कि तू आर्चध्यान मत कर। मरी गनशाला में चली जा। वहाँ भ्रमण माहणों को विपुल अशन पान आदि देती हुई आनन्द पूर्वक रह। पोट्टिला वैसा ही करने लगी।

एक समय सुमता नाम की आर्या अपनी शिष्य भण्डली सहित वहाँ आई। भिक्षा के लिए आती हुई दो आर्याओं को देख पोट्टिला ने अपने आसन से उठ कर उन्हें वन्दना नमस्कार किया और

आदर पूर्वक आहार पानी चहराया। फिर पोट्टिला उनमें पूछने लगी कि कृपा कर मुझे कोई ऐसी दवा, चूर्णयोग या मन्त्र बगैरह बताओ निम्नमें मैं फिर तेतलीपुत्र को प्रिय एव इष्ट बन जाऊँ ? पोट्टिला के इन वचनों को सुन कर उन आर्याओं ने दोनों हाथों से अपने दोनों कान रुन्द कर लिए और कहने लगी कि ऐसी दवा या मन्त्र तन्त्र मताना तो दूर रहा हमें ऐसे वचनों को सुनना भी योग्य नहीं, क्योंकि हम तो पूर्ण ब्रह्मचर्य को पालने वाली आर्याएँ हैं। हम तुम्हें कपली प्ररूपित धर्म कह सकती हैं।

उन आर्याओं के पास से कपली प्ररूपित धर्म को सुन कर पोट्टिला ने श्राविका के तत अङ्गीकार किये और धर्मकार्य में प्रवृत्त हुई। कुछ समय पश्चात् पोट्टिला ने सुत्रता आर्या के पास टीक्षा लेने के लिए तेतलीपुत्र से आज्ञा मागी। तेतलीपुत्र ने कहा—‘चारित्र्य पालन करके जब तुम स्वर्ग में जाओ तब वहाँ से आकर मुझे कपली प्ररूपित धर्म का उपदेश देकर धर्म मार्ग में प्रवृत्त करो तो मैं तुम्हें आना दे सकता हूँ।’ पोट्टिला ने इस बात को स्वीकार किया और तेतलीपुत्र की आज्ञा लेकर सुत्रता आर्या के पास टीक्षा ले ली। बहुत दिनों तक टीक्षा पाल कर काल करके देवलोक में उत्पन्न हुई।

इधर राजा कनकरथ की मृत्यु होगई तब गुप्त रखे हुए कनकध्वज कुमार को राजगद्दी पर बिठाया। राजा कनकध्वज अपनी माता पद्मावती रानी के कहन में तेतलीपुत्र मन्त्री का बहुत आदर सत्कार करने लगा तथा बंतेन आदि म प्रवृद्धि कर दी। इससे तेतलीपुत्र मन्त्री कामभोगों में अधिक गृद्ध एव आमक्त होगया। पोट्टिल देव ने तेतलीपुत्र को धर्म का बोध दिया किन्तु उसे धर्म की श्रौर रुचि न हुई। तब पोट्टिल देव ने देवशक्ति से राजा को मन फेर दि
वह तेतलीपुत्र का किमी प्रकार
विमुक्त होगया। तेतली

भीत हुआ और अन्तमघात करने की इच्छा करने लगा। तब पोट्टिल देव ने उसे प्रतिबोध दिया। शुभ अध्ययनमाय में तेतलीपुत्र को जातिम्मरण ज्ञान उत्पन्न होगया और अपने पूर्वभवं में ली हुई दीना आदि के उचान्त को जान कर उसने प्रत्रज्या ग्रहण की। कछममय यथात् उनको केवलज्ञान और केवलदर्शन उपन्न होगए। ऐसा न दुन्दुभि बना कर केवलज्ञान महोत्तम क्रिया। कनकध्वज राजा भी मन्दना नमस्कार करने गया। तेतलीपुत्र केवली न धर्म, रथा रही। धर्मरथा सुन कर राजा कनकध्वज ने श्रावक व्रत अङ्गीकार किये। बहुत वर्षों तक केवली पर्याय का पालन कर तेतलीपुत्र मोक्ष में पार गये।

(१५) नन्दीफल का दृष्टान्त

पन्द्रहवा 'नन्दीफल ज्ञान' अध्ययन-वीतराग देव व उपदेश से त्रिपय का त्याग और मत्स्य अर्थ की प्राप्ति होती है। उसने त्रिना नहीं हो सकती। यह बतलाने के लिए इसे अध्ययन में नन्दीफल का दृष्टान्त दिया गया है।

चम्पा नगरी में धन्ना सारथवाड रहता था। एक समय वह अहिच्छत्रा नाम की नगरी में व्यापार करने के लिए जाने लगा। उसने शहर में घोषणा करवाई कि जो कोई व्यापार के लिए मेरे साथ चलना चाहें व चले जिनके पास बल्ल, पात्र, भाडा आदि नहीं है उनका वे सब चीजें मैं दूँगा और अन्य मारी सुविधायें मैं दूँगा। इस घोषणा को सुन कर बहुत से लोग धन्ना सारथ-नाह के साथ जान को तय्यार हुए। कुछ दूर जान पर एक अटवी पड़ी। धन्ना सारथनाह मन लागी को सम्बोधित कर कहन लगा कि इस अटवी में फल फूल और पत्रा से युक्त बहुत से नन्दीवृक्ष हैं। उनका फल देखन में बड़े सुन्दर और मनोहर हैं, खाने में तन्काल

प्रादिष्ट भी लगते हैं किन्तु उनका परिणाम दुःखदायी होता है और अकाल म जीर्ण में दाय धीना पड़ता है। इसलिए तुम सब लोग नन्दी वृक्ष के फलों को न खाना और यहाँ तक कि उनकी छाया में भी मत बैठना। दूसरे वृक्षों के फल दिखने में तो सुन्दर नहीं हैं किन्तु उनका परिणाम सुन्दर है। उनका स्येच्छानुसार उपयोग कर सकते हो। ऐसा कह कर उन सब लोगों के साथ धन्ना सार्यवाह न उम अट्टरी में प्रवेश किया। कितनेक लोगों ने धन्ना सार्यवाह के कथनानुसार नन्दी वृक्षों के फलों को नहीं खाया और उनकी छाया में भी दूर रहे। इसलिए तन्काल तो वे सुखी नहीं हुए किन्तु अन्त में बहुत सुखी हुए। कितनेक लोगों ने धन्ना सार्यवाह के वचन पर विश्वास न करके नन्दी वृक्षों के सुन्दर फलों को खाया और उनकी छाया में बैठ कर आनन्द उठाया। इसमें तन्काल तो उन्हें सुख प्राप्त हुआ किन्तु पीछे उनका शरीर भयकर विप में व्याप्त होगया और अकाल में हीमृत्यु को प्राप्त हुए। इसी तरह जो पुरुष नन्दी फलों के समान पाँच इन्द्रियों के विषयों का त्याग करेंगे उनकी मोक्ष सुख की प्राप्ति होगी। जो लोग नन्दी वृक्षों के समान इन्द्रियों के विषयसुख में आसक्त होंगे। वे अनेक प्रकार के दुःख भोगते हुए संसार में परिभ्रमण करेंगे।

इसके पश्चात् वह धन्ना सार्यवाह अहिच्छत्रा नगरी में गया। अपना माल बेच कर बहुत लाभ उठाया और वहाँ में नापिस माल भर कर चम्पा नगरी में आगया। बहुत वर्षों तक ससार के सुख भोगन के पश्चात् धर्मघाष मुनि के पास दीक्षा ग्रहण की। प्रव्रज्या का पालन कर देवलोक में गया और वहाँ से चमर महाविदेह क्षेत्र में जन्म लेकर पद प्राप्त करगा।

(१६) श्रीकृष्ण का अपरकृष्ण गमन

मोलहवा 'अपरकृष्णागत' अध्ययन-विषय सुरा कितने दृष्ट दायी होने हैं, इसका उर्णन इस अध्ययन में किया गया है। विषय सुरा को न भोगते हुए केवल उनकी इच्छा रखने मात्र में अनर्थ की प्राप्ति होती है। इसके लिए अपरकृष्ण के रात्रा पत्रोत्तर का दृष्टान्त दिया गया है। इसमें द्रौपदी की कथा बड़े विस्तार के साथ दी गई है।

द्रौपदी का जीव पूर्वभय में चम्पा नगरी में नागश्री त्राक्षणी के रूप में था। एक बार उसने धर्मरुचि मुनि को मामरमण के पारण्ये के दिन कड़वे तुम्बे का शाक बहराया। उस शाक को लेकर धर्मरुचि अनगार अपने गुरु धर्मघोष मुनि के पास आये और आहार दियलाया। उस शाक को चर गुरुने कहा कि यह तो कड़वे तुम्बे का शाक है। एतान्त में जाकर इसकी परठ दो गुरु की आज्ञा लकर धर्मरुचि एकान्त स्थान में आये। वहाँ आकर जमीन पर एक बूँद डाली। शाक में घृतादि पदार्थ अच्छे डाल हुए थे इसलिए उस की सुगन्ध में उड़त सी कीड़ियाँ उस बूँद पर आई और उमरे जहर में मर गईं। मुनि ने सोचा एक बूँद से इतनी कीड़ियाँ मर गईं तो न जाने इस मार शाक में कितने जीवों का नाश होगा? इस प्रकार कीड़ियों पर अनुकम्पा करके उस सारे शाक को धर्मरुचि अनगार स्वयं पी गये। इससे शरीर में प्रसन्न पीडा उत्पन्न हुई। उमी समय मुनि ने मथारा कर लिया। ममावि पूर्वक मरण प्राप्त कर वे सर्वाथसिद्ध अनुत्तर विमान में उत्पन्न हुए। वहाँ में चर कर महारिदेह क्षेत्र में उत्पन्न होंगे और प्रवज्या ग्रहण कर मोक्षपत्र प्राप्त करेंगे।

धर्मरुचि मुनि को कड़वा तुम्बा बहराने आदि का सारा वचान्त

नागश्री के पति को मालूम हुआ। इमसे वह अतिकुपित हुआ। जिना और तादना पूर्वक उसने नागश्री को घर से बाहर निकाल दिया, जिममे लोगों में भी उसकी बहुत हीलना और निन्दा हुई। दर दर मटकती हुई नागश्री के शरीर म सोलह रोग उत्पन्न हुए। मर कर छठी नरक म उत्पन्न हुई। वहाँसे निकल कर मत्स्य (मच्छ), सातवीं नरक, मत्स्य, सातवीं नरक, मत्स्य, छठी नरक, उरगादिक के भव बीच में करती हुई पाचवीं नरक से पहली नरक तक, वादर पृथ्वीकाय आदि सप्त एकेन्द्रियों में लाखों भव करने के पश्चात् चम्पानगरी में सागरदत्त सार्थवाह के सुकुमालिका नाम की पुत्री रूप म उत्पन्न हुई। यौवन वय को प्राप्त होने पर जिनदत्त सार्थवाह के पुत्र सागर के साथ विवाह किया गया किन्तु उसके शरीर का स्पर्श तल-सार जैसा उग्र और अग्नि सरीखा उष्य लगने के कारण सागर ने तत्काल उसका त्याग कर दिया और अपने घर चला गया। इससे सुकुमालिका अति चिन्तित हुई। तब पिता ने उसको आश्वासन दिया और अपनी दानशाला में उसे दान देने के लिए रख दिया।

एक समय गोपालिका आर्या से धर्मोपदेश सुन कर उसे ससार स रिक्ति हो गई। उसने गोपालिका आर्या के पास प्रज्या अङ्गी-कार कर ली। वह बेला, तेल आदि तप करती हुई विचरने लगी। एक समय अपनी गुरुधानी की आज्ञा के बिना ही शहर के बाहर उद्यान में जाकर सूर्य की आतापना लेने लगी। वहाँ उसने देव-दत्ता गणिका के साथ क्रीड़ा करते हुए पाच पुरुषों को देखा। यह देख कर सुकुमालिका आर्या ने नियाणा कर लिया कि यदि मेरी तपस्या का फल हो तो आगामी भव में मैं भी पाच पुरुषों की वल्लभा (प्रिया) बनूँ। इस प्रकार का नियाणा करके चारित्र (संयम) में भी वह शिथिल होगई। अन्त में अर्धमास की संलिखना करके 'मैं देवी रूप में उत्पन्न हुई। उहा

कर आपिन्य नगर में द्रुपद राजा के यहाँ पुत्री रूप में उत्पन्न हुई। उसका नाम द्रौपदी रखा गया। यौवन यय को प्राप्त होने पर राजा द्रुपद ने द्रौपदी का स्वयंवर करवाया जिसमें द्रौपदी ने युधिष्ठिर आदि पाँचों पाण्डवों को चर लिया अर्थात् पति रूप में स्वीकार कर लिया।

एक समय नारद ऋषि पाण्डवों के महल में आये। सबने खडे होकर ऋषि का आदर सत्कार किया किन्तु द्रौपदी ने उनका आदर सत्कार नहीं किया। इससे नारदजी को बुरा मालूम हुआ। उन्होंने धातकी राण्ड में अपरजङ्गा नगरी के राजा पद्मोत्तर के पास जाकर उसके सामने द्रौपदी के रूप लावण्य की प्रशंसा की। पद्मोत्तर राजा ने देवता की सहायता से द्रौपदी का हरण करवा कर अपने अन्त पुर में भगवा लिया। महासती होने के कारण वह उसको वश में नहीं कर सका। कृष्ण वासुदेव के साथ पाँचों पाण्डव अपरजङ्गा नगरी में गये और युद्ध में पद्मोत्तर को पराजित करके द्रौपदी को वापिस ले आये। कई वर्षों तक गृहस्थाश्रम में रह कर पाँचों पाण्डवों ने दीक्षा ली और चारित्र्य पालन कर सिद्धपद को प्राप्त किया। द्रौपदी ने भी प्रव्रज्या ग्रहण की, अनेक प्रकार की तपस्या करके वह ब्रह्मदेवलीक में देवरूप से उत्पन्न हुई। वहाँ से चत्र कर महानिदेह क्षेत्र में उत्पन्न होकर सिद्धिपद को प्राप्त करगी।

इस अध्ययन से यह शिक्षा मिलती है कि नागश्री न मुनि को बड़े तुम्हे का शाक बहराया जो महा अर्थ का कारण हुआ और नारकी, तिर्यञ्च आदि के भवों में उसे अनेक प्रकार के दुःख उठाने पड़े। सुकुमालिका के भय में नियाणा क्रिया जिससे द्रौपदी के भय में उमको मोक्ष की प्राप्ति नहीं हुई। इसलिए साधु साध्वी को किसी प्रकार का नियाणा नहीं करना चाहिये।

(१७) अश्वों का दृष्टान्त

मतरहमाँ 'अश्वज्ञात' अध्ययन—इन्द्रियों को बश में न करने में अर्थ की प्राप्ति होती है। यह बतलाने के लिए इस अध्ययन में अश्वों का दृष्टान्त दिया गया है।

इस्तिशीर्ष नाम के नगर में रुनक केतु नाम का राजा राज्य करता था। उम नगर में बहुत से व्यापारी रहते थे। एक ममय जहाज में माल भर कर वे समुद्र में यात्रा कर रहे थे। दिशा की भूल होने से वे कालिक नाम के द्वीप में पहुँच गए। वहाँ सुवर्ण और रत्नों की खानें थीं और उत्तम जाति के अनेक प्रकार के विचित्र घोड़े थे। वे मनुष्यों की गन्ध सहन नहीं कर सकते थे इसलिए उन व्यापारियों को देखते ही वे बहुत दूर भाग गए। मोने और रत्नों से जहाज को भर कर वे व्यापारी वापिस अपने नगर में आगए।

वहाँ के राजा रुनककेतु के पूछने पर उन व्यापारियों ने आश्चर्य-प्रकारक उन घोड़ों की हकीकत कही। राजा ने उन घोड़ों को अपने यहाँ मँगाने की इच्छा से उन व्यापारियों के साथ अपने नौकरों को भेजा। वे नौकर अपने साथ बहुत से उत्तम उत्तम पदार्थ लें गए और घोड़ों के रहने के स्थान पर उन सुगन्धित चीजों का विस्तार दिया और स्त्रय छिप कर एकान्त में बैठ गए। इमके बाद धूमते फिरते वे घोड़े वहाँ आए। उनमें से कितने घोड़े उन सुगन्धित पदार्थों में आसक्त हो गए और कितने घोड़े उनमें आसक्त न होते हुए दूर चले गए। जो घोड़े उन सुगन्धित पदार्थों में आसक्त होगए उनको उन नौकरों ने पकड़ लिया और इस्तिशीर्ष नगर में राजा के पास ले आए। राजा ने इन्हें देखते ही

उन घोड़ों को

यह

इस प्रकार

एक ममय श्रमण भगवान् महावीरस्वामी राजगृह नगर के गुणगील उद्यान में पधारें। धर्मोपदेश सुन कर उसे वैराग्य उत्पन्न होगया। भगवान् के पास टीका ग्रहण की। कई वर्षों तक समय का पालन कर साधर्म देवलोक में उत्पन्न हुआ। वहाँ में चर कर महाविदेह क्षेत्र में जन्म लेकर मिद्धिपद को प्राप्त करेगा।

जिम प्रकार धन्ना मार्थराह ने वर्ण, गन्ध, रस, रूप आदि के लिए नहीं किन्तु केवल अपने शरीर निर्वाह के लिए और राजगृह नगरी में पहुँचने के लिए ही सुसुमा बालिका के मांस और रुधिर का सेवन किया था। इसी प्रकार साधु साध्वियों को भी इस अशुचिरूप औदारिक शरीर की पृष्टि एवं रूप आदि के लिए तथा किन्तु केवल मिद्धगति को प्राप्त करने के लिए ही आहार आदि करना चाहिए। ऐसे आत्मार्थी साधु साध्वी एवं श्रावक श्राविका इस लोक में भी पूज्य होते हैं और क्रमशः मोक्ष सुख को प्राप्त करते हैं।

(१९) पुण्डरीक और कुण्डरीक की कथा

उत्तीमरा 'पुण्डरीक जात' अध्ययन—ने उद्धृत ममय तरु ममय का पालन कर पीछे ममय को छोड़ दे और सामारिक पदार्थों में विशेष आसक्त हो जाय तो उसे अनर्थ की प्राप्ति होती है। यदि उत्कृष्ट भाव में शुद्ध समय का पालन थोड़े ममय तरु भी किया जाय तो आत्मा का रुल्याण हो सकता है। इस बात को बताने के लिए इस अध्या० में पुण्डरीक और कुण्डरीक का वृष्टात दिया गया है।

पूर्व महाविदेह के पुष्कनावती विजय में पुण्डरीकिणी नाम की नगरी थी। उसमें महापद्म नाम का राजा राज्य करता था। उसके पुण्डरीक और कुण्डरीक दो पुत्र थे। कुछ समय पश्चात् राजा महापद्म ने अपने ज्येष्ठपुत्र पुण्डरीक का राजगद्दी पर बिठा कर तथा

कुण्डरीक को पुरराज बना कर धर्मघोष स्थविर के पास दीक्षा ले ली। बहुत पढ़ाई करके मयम का पालन कर मिद्विषट को प्राप्त किया। एक समय फिर वे ही स्थविर मुनि पुण्डरीकिणी नगरी के नलिनी-वन उद्यान में पधारे। धर्मोपदेश सुन कर राजा पुण्डरीक ने तो श्रावक व्रत अङ्गीकार किये और कुण्डरीक ने दीक्षा ग्रहण की। इसके बाद वे जनपद में विहार करने लगे। अन्तप्रान्त आहार करने में उनके शरीर में दाहज्वर की विमारी उत्पन्न होगई। ग्रामानुग्राम विहार करते हुए एक समय वे पुण्डरीकिणी नगरी में पधारे। स्थविर मुनि को पूछ कर कुण्डरीक मुनि पुण्डरीक राजा की यान-शाला में ठहरे। राजा ने मुनि के योग्य चिकित्सा करवाई। जिससे वे थोड़े ही समय में स्वस्थ होगए। उनके साथ वाले मुनि विहार कर गये किन्तु कुण्डरीक मुनि ने विहार नहीं किया और मातु के आचार में भी शिथिलता करने लगे। तब पुण्डरीक राजा ने उन्हें ममभाया। पुण्डरीक के ममभाने पर कुण्डरीक मुनि विहार कर गये। कुछ समय तक स्थविर मुनि के साथ उग्र विहार करते रहे किन्तु फिर शिथिल-लाचारी बन कर वे अकेले ही पुण्डरीकिणी नगरी में आगये। कुण्डरीक मुनि को इस प्रकार शिथिलाचारी देख कर पुण्डरीक राजा ने उन्हें बहुत ममभाया किन्तु वे ममके नहीं, प्रत्युत राजगद्दी लेकर भोग भोगने की इच्छा करने लगे।

पुण्डरीक राजा ने उनके भागों को जान कर उन्हें राजगद्दी पर स्थापित किया और स्वयमेव पंचमुष्टि लोच करके प्रव्रज्या अङ्गी-कार की। 'स्थविर भगवान् को वन्दना करने के पश्चात् मुझे आहार करना योग्य है' ऐसा अभिग्रह करके उन्होंने पुण्डरीकिणी नगरी में विहार कर दिया। ग्रामानुग्राम विहार करते हुए वे स्थविर भग-वान् की मेवा में उपस्थित हुए। गुरु के मुख से महाव्रत अङ्गी-कार किये। तन्मथान् स्वयमेव विहार करने एक ही समय में विहार

केलिये गये। भिक्षा में आये हुए अन्तर्ग्रान्त एव रूढ़ अशुनादि का आहार करने से उनके शरीर में दाहज्वर की पीमारी होगई। अर्ध रात्रि के समय शरीर में तीव्र वेदना उत्पन्न हुई। आलोचना एवं प्रतिक्रमण करने मलेखना मंधारा किया। शुभ ध्यान पूर्वक मरण प्राप्त कर मर्षार्थमिद्ध विमान में उत्पन्न हुए। वहाँ स चक्र कर महाविदेह क्षेत्र में जन्म लेकर मिद्ध पत्नी को प्राप्त करेंगे।

उधर राजगद्दी पर बैठ कर कुण्डरीक काम भोगों में आसक्त होकर बहुत पुष्टिकारक और कामोत्तेजक पदार्थों का अतिमात्रा में सेवन करने लगा। वह आहार उमे पचा नहीं, जिससे अर्ध रात्रि के समय उसके शरीर में अत्यन्त तीव्र वेदना उत्पन्न हुई। आर्च, रौद्रध्यान ध्याता हुआ कुण्डरीक मर कर मातृनी नरक में गया।

इस दृष्टान्त से शास्त्रकारों ने यह उपदेश दिया कि जो माधु, माध्वी चारित्र्य ग्रहण करके शुद्ध आचरण करते हैं वे थोड़े समय में ही आत्मा का कल्याण कर जाते हैं। जैसा कि पुण्डरीक मुनि स्वल्प काल में ही शुद्ध आचरण द्वारा मुक्ति प्राप्त कर लेंगे। जो माधु, माध्वी समय लेकर पढ़िवाड़े होनाते हैं अथात् समय से पतित होजाते हैं और कामभोगों में आसक्त हो जाते हैं। वे कुण्डरीक की तरह दुःख पाते हैं और मर कर दर्गति में जाते हैं। अतः लिये हुए व्रत, प्रत्याख्यानो का भली प्रकार पालन करना चाहिए।

८५२ (ख) जैनयिक्ती (विणीया) बुद्धि के १५ दृष्टान्त-

निमिन्ने अत्यमन्थे अ, लेहं कणिए अरुण अस्मे य ।
 गदम (ह) लकमण गठी, अगण रदिए य गणिया ॥
 सीया माडी दीह च तणं, अवमन्थय च कु चस्ता ।
 निव्वीण्ये य गोगे, धोहग पदण च रुक्खाओ ॥

गाथार्थः—निमित्त १, अर्थ शास्त्र २, लेख ३, गणित ४, रूप ५, अरुण ६, गर्दम ७, लक्षण ८, ग्रन्थि ९, अगद १०, रथिक और गणिका ११-१२, खुरी साड़ी को ठडी कहने और चूण को लम्बा कहने, एर क्रौंच का वाम भाग में घूमने में आचार्य का मोघ १३, विपमय पानी से जार मरण १४, व नैल का चोरी जाना, घोड़े का मरण और घुड़ से पतन १५,—

इन सब उदाहरणों का कथारूप से 'स्पष्टी करण इस प्रकार है:—

१ निमित्ते:—निमित्त का दृष्टान्त—जमे-किसी नगर में एक सिद्ध पुत्र अपने दो शिष्यों को निमित्त शास्त्र पढ़ा रहा था। शिष्या में एक जो विनय मम्पन्न था वह गुरु के उपदेश को यथावत् नष्टमान पूर्वक स्वीकार करता और बाद में अपने चित्त में विचार करते हुए जहाँ भी सन्देह हुआ, तत्काल गुरु के पाम जाकर विनय पूर्वक पूछलेता। इस प्रकार निरन्तर विनय और प्रियेक के साथ शास्त्र पढते हुए उसने तीव्र बुद्धि प्राप्त कर ली। दूसरा इन गुणों से रहित होने के कारण केवल शब्द ज्ञान ही प्राप्त कर सका। एक दिन दोनों गुरु के आदेश से 'किमी पाम' के गाँव में जा रहे थे। मार्ग में किमी बड़े जन्तु के चरण चिन्ह दिखाई देते थे, विनयी शिष्य ने दूसरे से पूछा कि जन्तु ! ये 'किम' के पाँव हैं ? उसने कहा इसमें क्या पूछना ? ये साफ हाथी के पाँव के चिन्ह दीखते हैं। विनयी ने कहा-नहीं ऐसा नहीं हो सकता, ये हथिनी के चरण चिन्ह हैं और वह हथिनी बाईं ओर से काँधी है तथा उस पर किसी बड़े घर की सधवा स्त्री बैठकर जा रही है और एक दो दिन में ही 'उमको' जालक पैदा होगा क्योंकि उसके मांस अन्न पूरे हो गये हैं। विनयी के ऐसा कहने पर दूसरे ने पूछा—

अनी ! यह क्रिम पर मे समझने हो ? विनयी मोला-ज्ञान का सार ही विश्राम होना है, चलो आगे इसका निर्गुण हो जायगा । ऐमा कहकर दोनों उम गाँव में पहुँचे । जाते ही देखते हैं कि गाँव के बाहर तालाब के किनारे किसी रानी का डेरा है और हथिनी भी बाँड़े आँख में झाँकी है, इसी बीच में आर एक दासी ने मन्त्री से कहा कि स्वामिन् ! राजा को पुत्र लाभ हुआ है, बधाई दीजिये । विनयी ने ऐमा सुनकर दूमरे से कहा कि क्यों बन्धु ? टामी का वचन सुना ? उसने कहा-हाँ, तेरी सन बात सची है । फिर तालाब में हाथ पों धोर दोनों विश्राम के लिए एक बट घुल के नीचे बैठे । उधर से मस्तक पर पानी का घड़ा रखे हुए एक बुढ़िया जा रही थी उमन इन दोनों की आकृति व प्रकृति देख कर सोचा कि ये दोनों विद्वान् हैं । अत इनमे पूछना चाहिए कि मेरा देशान्तर में गया हुआ पुत्र कब लौटेगा ? ऐमा सोच कर पाम गई और नम्रता पूर्वक पूछने लगी । उसी समय मन्त्रक से गिरकर घड़ा डगड़े २ हो गया तुरन्त दूसरा यह देखकर बोल उठा-माँ ! तेरा पुत्र घड़े की तरह मर गया है । इस पर विनयी ने कहा-मित्र ! ऐमा मत कहो । इसका पुत्र अभी घर पर आया हुआ है और बुढ़िया से भी बोला कि माँ ! घर जाओ और अपने बिछुड़े हुए पुत्र का मुँह देखो ।

विनयी की बात से प्रसन्न हुई बुढ़िया उसको आशीर्वाद देती हुई घर गई और उसी समय घर पर आये हुए पुत्र को देखा । पुत्र के प्रणाम करने पर आशीर्वाद देकर बुढ़िया ने नैमिचित्तक का कहा हुआ सप घृत्तान्त पुत्र से कह सुनाया । फिर पुत्र को पूछकर कुछ रूपये व वस्त्र युगल

बुद्धिया ने विनयी को अर्पण क्रिये । तब दूसरा सोचने लगा कि—अहो ! गुरु ने मुझे अच्छा नहीं पढ़ाया है, अन्यथा जैसा यह जानता है, वैसा मैं भी क्यों नहीं जानता ! कार्य हो जाने पर दोनों गुरु के पास आए । गुरु के दर्शन करते ही विनयी ने अञ्जलि जीड़े हुए गिर को 'नमा कर आनन्दाश्रु-पूर्वक गुरु के चरणों में प्रणाम किया । दूसरा शैलस्तम्भ की तरह थोड़ा भी बिना नमो मात्मर्य धरता हुआ गुरु के सामने खड़ा रहा तब उममे गुरु बोले—अरे ! क्या आज प्रणाम भी नहीं करता ? यह बोला—जिम को आपने अच्छी तरह पढ़ाया है वह ही प्रणाम करेगा, हम ऐसे पक्षपाती गुरु को प्रणाम नहीं करते । गुरु बोले—क्या तुम को अच्छा नहीं पढ़ाया ? इस पर उसने पहले का सब हाल कह सुनाया । तब गुरु न विनयी से पूछा—उत्तम ! तुमने वह सब कैसे जाना ? कहो ! यह बोला—गुरुदेव ! मैंने आपकी कृपा से विचार करना शुरू किया कि हाथी के तो पाँव दिखते ही हैं किन्तु विशेषता क्या है ? फिर उमकी लघुशका को देखकर निश्चय किया कि ये हयिनी के पाँव हैं । दक्षिण राज के मंत्र वृक्ष राए हुए ये किन्तु बाँई बाज के नहीं, इसमें यह समझा कि बाँई आँस में यह काँपी है । साधारण मनुष्य हाथी की सवारी नहीं कर सकता । इससे निश्चय किया कि इस पर राजकीय मनुष्य है । वृक्ष पर लगे हुए रंगीन वस्त्र के भाग से सवारी रानी और भूमि पर लघुशका करने के बाद हाथ टेककर उठने से गर्भवती है तथा दक्षिण चरण और हाथ पर अधिक भार पड़ने से अन्य समय में ही पुत्रोत्पत्ति होगी ऐसा समझा । उस वृद्धा के प्रश्न करते ही जब घड़ा गिरकर टूट गया तब मैंने सोचा कि जैसे घड़े का

इतने वर्ष तक तुम काम करोगे तो दो घोड़े तुम को परिव्रम
 के बदले दिये जायेंगे। उमने भी यह स्वीकार कर लिया।
 रहते २ स्वामी की लक्ष्मी ४ माथ उसका बड़ा स्नेह हो गया।
 एक दिन उमन कन्या से पूछा— इन गय घोड़ों में मैंने मे दो
 घोड़े सत्र में अच्छे हैं ? स्वामिन्या ने कहा— कि यों तो सभी
 घोड़े विश्वास पात्र हैं, किन्तु दो घोड़े जो घुड़ से गिराए हुए
 बड़े पत्थरों के शब्दों को सुन कर भी नहीं डरते वे उत्तम हैं।
 उसने उमी प्रकार परीक्षा की और उन घोड़ों को पहचान
 लिया। फिर वेतन लेने के समय में स्वामी ने बोला कि मुझे
 अमुक २ घोड़े दीजिये। स्वामी बोला— अर ! हमारे अच्छे २
 घोड़े हैं। उनको ले, इन दो को लकर क्या करेगा ? ये अच्छे
 भी नहीं हैं। लेकिन उमन यह बात नहीं मानी। तब मठ ने
 मोचा— हमको घर जमाई बना लेना चाहिए, नहीं तो इन
 उत्तम घोड़ों को लकर यह ब्रजा जायेगा। लक्षण सम्पन्न घोड़ों
 से बुद्धिमत् ३ अरुणसम्पत्ति की भी वृद्धि होगी। ऐसा मोच कर
 न्या की अनुमति से उन दोनों का विवाह कर दिया।
 उमको घर जमाई बनाने से लक्षण सम्पन्न घोड़े बचालिए गये।
 यह अश्वस्वामी की विनयजा बुद्धि थी।

६— गठी— ग्रन्थि के द्वारा समझने में पाटलिपुत्राचार्य की
 बुद्धि का दृष्टान्त इस प्रकार है— किसी समय पाटलिपुर में मुरड
 नाम का राजा राज्य करता था। परराष्ट्र के राजा ने एक
 दिन सौतुक के लिए उसके पास तीन चीजें भेजी। १ गूढ
 घृत— (छिपे गाँठ वाला घृत), २ समयपटि— समयमाग वाली
 लक्ष्मी, व ३— लक्षण चिपकाया हुआ छिपे द्वार का चिह्न।
 राजा ने अपने सभी दरबारियों को ये चीजें दिखाई किन्तु
 कोई भी नहीं समझ सका। तब राजा ने पाटलिपुत्र के

आचार्य को बुलाकर पृथ्वा- भगवन् ! आप इनके ग्रन्थि द्वार जानते हो ? आचार्य ने कहा- हाँ जानता हूँ । ऐसा रुठ कर उसी समय सूत को गरम पानी में डाला, तो उष्ण पानी के संयोग से सूत का मैल हट गया और अन्त- ग्रन्थि का भाग दिख पड़ा । लकड़ी को भी पानी में गिराया जिमसे मालूम हुआ कि मूल भारी है और भारी भाग पर ही ग्रन्थि होती है । फिर डिब्बे को भी गरम करवाया जिमसे लास का सन भाग गल जाने पर द्वार प्रकट हो गया । राजा आदि सभी दर्शक इस कौतुक को देख कर खुश हुए फिर राजा ने आचार्य से कहा- महाराज ! आप भी कोई, ऐसा दुर्जेय कौतुक करिये जिम को मैं वहाँ भेज सकूँ । तब आचार्य ने किमी तुम्बी के एक प्रदेश में एक खण्ड हटाकर वहाँ रत्न भर दिए तथा उस खण्ड को इस प्रकार सी दिया कि किमी को लक्षित ही नहीं हो । फिर परराष्ट्र के राजपुरुषों को सूचना कर दी कि इसको बिना तोड़े ही इस से रत्न ले लें । किन्तु बहुत प्रयत्न करने पर भी उनको रत्नों का पता नहीं चला । यह आचार्य की धिनयजा बुद्धि थी ।

१०- अगए- अगद, वैद्य की विपोगमन बुद्धि का दृष्टान्त जैसे- किमी राजा के राज्य को गजुपक्ष के राजाओं ने चारों ओर से घेर लिया छोटे मैन्य से उनका मुकाबला करना अशक्य है । ऐसा सोचकर राजाने पानी में विपयोग करवाना शुरू किया । सभी लोग अपने अपने पास का विप लान लगे । एक वैद्य यत्रमात्र विप लेकर राजा को भेट किया । बहुत थोड़ा विप देख कर राजा वैद्य पर बहुत क्रुद्ध हुआ । तब वैद्य बोला- महाराज ! यह विप सहस्रपेथी है । थोड़ा देख कर आप नाराज

न होवें। इस पर राजा ने पूछा— कि इसके सहस्रपेधी होने में क्या सबूत है? वैद्य बोला— देव किमी पुराने हाथी को मँगवाईये। मैं प्रयोग करके दिखाता हूँ। उसी समय एक बूढ़ा हाथी लाया गया और वैद्य ने उसकी पुच्छ का एक बाल उखाड़ कर उस बाल में हाथी के भिन्न भिन्न अंगों में विष प्रयोग किया। निम निम अंग में विष फैलता गया उन २ अंगों को नष्ट कर दिया। तब वैद्य बोला— देव ! हाथी विषमय हो गया है अब जो भी इसको खायगा वह भी विषमय हो जायगा। इस प्रकार यह विष क्रमशः हजार तक पहुँचता है। हाथी की मृत्यु से राजा बृद्ध उठाम होकर बोला— क्या अब हाथी को जिलाने का उपाय भी है? वैद्य बोला— जरूर। उसी बाल के रन्ध्र— (गड्ढे) में एक औषध दिया गया जिसमें बृद्ध ही समय में वह विषविकार शान्त हो गया। हाथी अच्छा बन गया और राजा भी वैद्य पर सन्तुष्ट हुआ। यह वैद्य की विनयजा बुद्धि हुई।

११-१२—उदाहरण 'रथिक और गणिका'—पाटलीपुत्र में कोशा नाम की एक पौर्या रहती थी। उसके यहाँ स्थूलभद्र मुनि ने वर्षाणाम किया और हारभाव से विचलित न होकर उसकी उपदेश से श्राविका बनायी, जिसे राजा नियोग के सिवाय उसने भी मैथुन के त्याग कर दिए। किमी समय एक रथिक ने राजा को प्रसन्न कर कोशा की माँगणी की। राजा ने भी उसकी माँगन पर कोशा को हुजूम दे दिया, किन्तु जब रथिक उसने पास पहुँचा तो वह नारंगार स्थूलभद्र मुनि की स्तुति करती, परन्तु उसकी नहीं चाहती। रथिक अपने विज्ञान से उसकी प्रसन्न करने के लिए अशोक वनिका में ले गया और जमीन पर खड़ा ७ आन्नवृक्ष से श्राव की तुम्ही की

तोड़कर अर्धचन्द्र के आकार से काटली। फिर भी कोशा सन्तुष्ट नहीं हुई और बोली कि शिषित को क्या दुष्कर है, देखो म सर्प की राशिपर सूई में पोये हुए रनेर के फूलों पर नाचती हूँ, ऐसा कह कर उमने सर्प राशि पर नृत्य कर दियाया। रथिक हुलस उसकी बहुत प्रशमा करने लगा, तन रेश्या ने कहा—“आम्र की तुम्ही को तोड़ना और सर्प की डेरी पर नाचना दुष्कर नहीं, किन्तु प्रमदा—समूह म रहकर मुनि बना रहना यह दुष्कर है”। इस पर स्थूलभद्र मुनि का वृत्तान्त कह मुनाया, जिममे रथिक को भी वैराग्य आगया। यह रथिक और गणिका की विनयवा युद्धि हुई।

१३—माटी आदि का दृष्टान्त—जैसे—कुछ राजकुमारों को एक कलाचार्य शिषण दे रहा था। राजकुमारों ने भी उपकार के बदले में बहुमूल्य द्रव्यों से समय ममय पर आचार्य का सम्मान किया। इस प्रकार अपने पुत्रों के बहुमूल्य द्रव्य देने पर क्रुद्ध होकर रानाने आचार्य को मराना चाहा। किसी तरह राज पुत्रों को यह बात मालूम हो गई। उन्होंने सोचा कि निद्या दाता होने से आचार्य भी हमारे पिता हैं, अतः इनको विपत्ति से बचा लना हमारा कर्तव्य है। थोड़ी देर के बाद आचार्य भोजन के लिए आए और धोती मॉगने लगे। इस पर कुमारों ने सूखी होते हुए भी कहा—धोती मीली है तथा द्वार के सामने एक छोटा तृण खड़ा करके बोले—तृण बहुत दीर्घ—लम्बा है। ऐसे ही क्रॉच शिष्य पहले सदा आचार्य की दक्षिण ओर से प्रदक्षिणा करता किन्तु अभी वह गामभाग से घूमने लगा। इस प्रकार कुमारों के विपरीत कथन और क्रॉच के वाम भ्रमण से आचार्य ममभ गये कि सभी मेरे से विरुद्ध (उलटे) हैं, केवल ये कुमार ही भक्ति नता रहे हैं। ऐसा सोचकर राजा को लक्षित

न हो इस प्रकार से आचार्य चले गए । यह आचार्य और कुमारों की विनयजा बुद्धि हुई ।

१४-निम्बोदण-नीत्रोदक-कोतवाल की मृतक परीक्षा का दृष्टान्त-जैमे-वद्वृत दिनों से क्रिमी वणिक् स्त्री का पति विदेश में गया हुआ था । एक दिन उस वणिक् वधूने कामातुर होकर अपनी दामी से क्रिमी पुस्तक को लाने के लिए कहा-दासी भी एक युवावस्था सम्पन्न पुरुष को ले आई । फिर नाई ने उसके नख केश आदि का संस्कार करवाया गया । रात में उस पुरुष के साथ मेठानी दूसरे मजिल पर गई । कुछ समय के बाद उस पुस्तक को प्यास लगी । उसने तत्काल बरमा हुआ मेघ का पानी पीलिया । पानी च्वचा में बिप वाले सर्प से छुआ गया था । अतः पानी पीने के दूसरे ही क्षण वह पुरुष मर गया । इस आकस्मिक घटना से भयभीत हो, उस वणिक् वधूने रात के पिछले भाग में किसी शून्य देवल में यह शय लेजाकर रखना दिया । प्रातः काल होते ही लोगों की दृष्टि पड़ी तो तुरन्त कोतवाल को सूचना दी गई । उसने आकर देखा तो मालूम हुआ कि इस मृत पुस्तक के नख केशादि थोड़े ही समय पहले बनाये गये हैं । इस पर नाइयों से पूछा गया, उन म से एक ने कहा कि स्वामिन् ! अमुक सेठ की दासी के कहने से इसके नख आदि मैंने बनाए हैं । दासी से भी इस बात की जाँच करके भेद सुलना लिया । यह नगर रक्षक की विनयजा बुद्धि हुई ।

१५-गोणे-घोडग (मरणा), पदण च रक्षयाथो, बैल की चोरी होना, प्रहार से घोड़े का मरण और पुराने वस्त्र के टूटने के कारण वृच से गिरना, इनका अभिप्राय निम्न दृष्टान्त से

ममर्भे-नैसे-किमी गाँव में एक पुण्यहीन पुरुष रहता था। एक दिन वह अपने मित्र में बैल मँगाकर ढल चलाने गया। कार्य हो जाने पर मन्ध्या के भगवत बैल को बाड़े में लाकर छोड़ दिया। मित्र भोजन कर रहा था। अतः वह उमके पास नहीं गया, केवल मित्र ने बैल को देख लिया है, इस लिये मित्र को अपना कहे ही वह अपने घर चला गया। बैल असावधानी के कारण बाड़े से निकल कर कहीं चला गया और चोरों ने मौका पाकर उमको चुरा लिया। मिन बाड़े में बैल को न देखकर उससे मांगने लगा, किन्तु वह कहाँ से ढंता ? क्यों कि वह तो चोरी हो गया था। तब न्याय कराने के लिए वह मित्र पुण्यहीन को राजकुल में ल चला मार्ग में घोड़े पर चढ़ा हुआ एक प्रादमी मामने से आ रहा था। अकस्मात् घोड़े के चोंकने से वह उम पर से गिर गया और घोड़ा भागने लगा। ये लोग सामन आ रहे थे। इस वास्ते उसने कहा कि घोड़े को जरा मार के वहीं रोके रखना। पुण्यहीन ने उसकी बात सुनते ही घोड़े के मर्मस्थल पर एक प्रहार कर दिया। घोड़ा कोमल प्रकृति का होने से प्रहार लगते ही मर गया। अथ तो घोड़े जाला भी पुण्यहीन पर अभियोग चलाने को साथ हो गया। जब तक ये लोग नगर के पास आये तब तक सूर्य अस्त हो गया। इसलिए रात में तीनों ही नगर के बाहर ठहर गये। वहाँ बहुत से नट मौए हुए थे। उसी समय वह पुण्यहीन सोचने लगा कि इस प्रकार के दुःख में तो गले में पाश डाल के मर जाना ही अच्छा है, जिससे कि सदा के लिए विपत्ति का पिण्ड ही छूट जाय। ऐसा सोचकर अपने वस्त्र का वृक्ष में पास बँधने में डाल लिया। अन्यन्त जीर्ण होने से वह व

टूट गया। इसमें वह बेचारा नीचे मोड़ हुआ एक नट के मुखिया पर जा गिरा, जिससे वह नट मर गया।

नटों ने भी उम पुण्यहीन की परछाई और सुनद होते ही तीना पुण्यहीन का लिय हुआ राज कुल में पहुँचे। राजकुमार ने उन मर्तों की बातें सुनकर पुण्यहीन में पूछा। उमन तीनता के साथ कहा कि महाराज! इन सब का कहना सच्चा है। तब राजकुमार उम पर दया करके उमके मित्र से बोले कि यह तुमको रूल देगा, किन्तु, तुम्हारी आँखें उखाड़ देगा, क्योंकि जिस समय तुम अपने सामने चल देख लिया उसी समय यह भ्रम मृत्त हो गया। अगर तुम नहीं देखे हाते तो यह भी अपने घर नहीं जाता। क्योंकि जो जिस को कुछ देने के लिए आता है वह बिना उसको सम्भ्राय अपने घर नहीं जा सकता। उमन तुम्हारे सामने लाकर रूल आया था। अतः यह निर्णय है। फिर धोड़े जाने की सुलाया और कहा कि हम तुम्हारा घोंडा दिलायेंगे, लेकिन तुमकी अपनी जीभ काट कर इसको देनी होगी। क्योंकि तुम्हारे पहने पर ही दसने घोंडा पर प्रहार किया है बिना रहे नहीं, अतः तुम्हारी जीभ ही पहल दोषी होती है, उमको उखाड़ कर अलग कर देना चाहिए। इसी प्रकार नटों को बुलाकर कहा— देखा, इसका नाम कुछ भी नहीं, जो तुम को दण्ड में दिलाए, इन्साफ इतना ही कहता है कि जैम — गले में पाश डालकर यह वक्त से तुम्हारे स्वामी पर गिरा, इसी प्रकार तुम्हारे में मेरे कोड़े भी प्रधान इस पर वृत्त से गिर, यह नीचे सी जायगा। कुमार की ऐसी बातें सुनकर सभी चुप हो गये और वह पुण्यहीन अभियोग से मुक्त हो गया। यह राजकुमार की धैर्यिका बुद्धि हुई। (१७१ मू. हस्तिमालती कृत)

